चन्दामामा

Photo by A. L. Syed

पुरस्कृत
परिचयोक्ति

जाने की आकुलता

प्रेषक
जगमोहन आचार्य खिलचीपुर

दाँतों की रक्षा के लिए सावधान रहो !

झुमकी की प्यारी सखी है रूमा। रूमा अपनी पढ़ाई में बहुत अच्छी है। परंतु उसे बड़ा दुख यह है कि झुमकी के सिवा और कोई उसको दोस्त बनाना नहीं चाहता, क्योंकि उसके मुँह से दुर्गन्ध आती है। इसी लिए वह गन्दी रहती है और अपने दाँतों को नहीं माँजती। रूमा एक दिन दोपहर को जब झुमकी के घर पर खेल रही थी, कि सहसा उसके दाँतों में दर्द होने लगा और वह रोने लगी। यह देख कर झुमकी रूमा को अपने पिताजी के पास ले गई। झुमकी के पिताजी एक अनुभवी डाक्टर थे। उन्होंने दाँतों पर लगाने को एक दवाई रूमा को दी; और उससे कहा कि यदि वह **कलकत्ता केमिकल** वालों की नीम से बनी हुई **'नीम टूथ पेस्ट'** से हर रोज पाबन्दी के साथ अपने दाँत माँजती रहे तो वह कभी भी दाँतों के रोग से पीड़ित नहीं होगी। दाँतों की बीमारी से और कई बीमारियों के पैदा होने की संभावनाएँ हैं इसलिए बचपन से ही दाँतों के सम्बन्ध में सावधान रहना चाहिए। उन्होंने यह भी कहा कि वह दिन में तीन बार **कलकत्ता केमिकल** वालों की **'स्टेरिलीन'** से कुल्ला भी करती रहे। झुमकी सावधानी से अपने पिताजी की बातों को सुनती रही, और रूमा को उसके घर ले जाकर उसकी माताजी से अपने पिताजी की हिदायत वाली बातें बता दीं।

दो दिन के बाद रूमा हँसती हुई झुमकी के घर खेलने आई। झुमकी के पिताजी ने पूछा—'कैसा है तुम्हारे दाँत का दर्द?' रूमा ने जवाब दिया, उसने ठीक उनकी हिदायत और अपनी माताजी की आज्ञानुसार दिन में तीन बार **'स्टेरिलीन'** गरम पानी में मिला कर उससे कुल्ला किया, और अब दिन में दो बार **'नीम टूथ पेस्ट'** से वह दाँत माँजती है जिसके फल स्वरूप अब न उसके दाँतों में दर्द है और न उसके मुँह में दुर्गन्ध।

झुमकी ने रूमा के उन साथियों के बतलाने के लिए जो बचपन से दाँतों की देख-रेख नहीं करते, और बाद को रूमा की तरह पीड़ित होते हैं यह चित्र खींचा है।

(दि कलकत्ता केमिकल कम्पनी लि. ३५, पण्डितिया रोड, कलकत्ता-२०, द्वारा बाल-बच्चों की भलाई के लिए प्रचारित।)
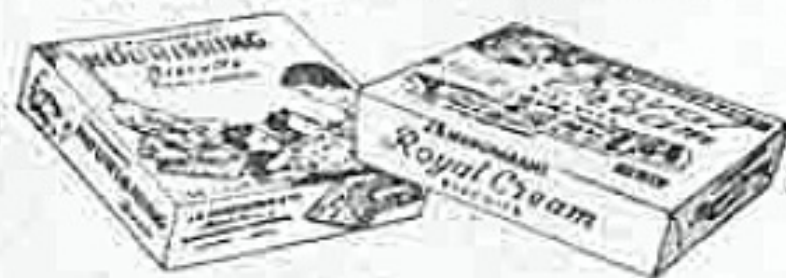
बिड़ला
कटेलो चम्पा
केश तैल
अनुपम गन्ध
एवं केश शोभा
केलिये

वीर-बच्चा
बच्चों की ताकत के लिये
अनुपम टानिक
बिड़ला लेवोरेटरीज, कलकत्ता-२०

चन्दामामा
जादूगर हमारी-तुम्हारी तरह का आदमी
ही होता है। जिनको करामातों को देख
कर हम तुम अचरज में पड़ जाते हैं, वह शक्ति
उसके अन्दर से ही निकलती है और उसे बाहर
निकालता है अभ्यास। किसी एक खिलाड़ी
लड़के को अपना पाठ याद नहीं होता था और
उसे अपने स्कूल में रोज ही अपमानित होना पड़ता
था। एक दिन घबरा कर उसने एक कुएँ में गिर
जाना चाहा; लेकिन वहाँ उसे कुएँ के पत्थरों पर
रस्सी घिसने के चिन्ह दीख पड़े और उसे रहीम का
वह दोहा याद आ गया—'करत-करत अभ्यास के जड़मति
होत सुजान। रसरी आवत जात ते सिल पर पड़त निसान॥'
वर्ष 5 : जून 1954 : अङ्क 10
संचालक : चक्रपाणी

श्रृंगी ऋषी की कहानी

चल रही शीतल पवन,
थी चाँदनी छिटकी हुई।
शांति की गोद में थी
रात भी हँसती हुई।

ऐसे ही सुन्दर समय में
दादा पोतों को लिए,
कह रहे थे एक कथा
वह पुराण की हँसते हुए।

मूर्त्ति पत्थर की बन
बैठे थे वे बालक सभी।
देख कर दादा ने ऐसा
तब कथा आरम्भ की।

पन्ने रामायण के उलटे
और यह कहने लगे—
'राजाओं में देश कौशल
के थे दशरथ ही बड़े।

राज्य का पालन थे करते
वे लगन और ध्यान से;
अयोध्या नगरी में थे
रहते वह अच्छी शान से।

मंत्रियों में सुमन्त्र ही
था बस—सब से बड़ा।
हाथ था दायाँ वह उनका
और बहुत प्रसिद्ध था।

धर्म पर उपदेश देते;
थे गुरु वशिष्ठ उसे।
और थे भ्रमण भी करते
वे दसों दिशाओं में।

राज्य में उनके वहाँ
थी न कोई भी कमी।
खेलता था सुख वहाँ,
फिरती हँसती जिन्दगी।

* * *

धर्म के अनुसार सब
चल रहा था राज्य-पाट।
इस तरह खुशियों के बीच
पल रहा था राज्य-पाट।

रानियाँ थीं तीन उनके;
कैकेई, सुमित्रा, कौशल्या।
और तीनों में किसी के
एक भी बालक न था।

थी अगर चिंता कोई तो,
बस थी एक सन्तान की!
जिसके कारण राजा दशरथ
भूल बैठे थे खुशी।

रख चुके थे व्रत भी—
यह यज्ञ भी थे कर चुके।
चिंता वैसी ही रही—
और सब उपाय कर थके।

तब बुला कर पंडितों को
उन से दशरथ ने कहा—
'पुत्र मिलने का उपाय;
दीजिए मुझको बता!'

बोले पंडित कीजिए—
यज्ञ पुत्र कामोष्टी अगर
निश्चय ही हो पूरी इच्छा
और खुशी से नाचे घर!'

तब किया राजा ने यह
प्रबन्ध—बुलाने के लिए।
भेजा अपने दूतों को,
ऋषी शृंगी के लाने के लिए।

पूछ बैठे बच्चे—'दादा
ऋषी शृंगी कौन थे?'

डाँट कर तब दादा बोले—
'अब न कोई दखल दे!'

और फिर आगे कथा को
इस तरह जारी किया—
'रोमपाद के नाम का
एक पृथ्वी का राजा था।'

बहुत सालों से वहाँ पर
होती वर्षा ही न थी।
राजा ने बुलवाए पंडित—
और सलाह कुछ उनसे ली।

बोले पंडित सोच कर—
'आप इक उपाय कीजिए—
विभांडक नामक ऋषी के
पुत्र को बुलवा लीजिए।'

है बड़ा ही भोला भाला
कुछ नहीं यह जानता।
नर का और नारी का भी
अन्तर नहीं पहचानता।

उसके आने से नगर में
दूर होगा यह अकाल।
वर्षा भी हो जाएगी—
फट जाएगा सङ्कट का जाल!

उसके लाने के लिए—
ऐसा उपाय हम करें;
सुन्दरियाँ भेजें वहाँ कुछ
और उसको खुश करें।

सुनके राजा ने फ़ौरन
भेजी वहाँ कुछ सुन्दरियाँ।
दूर आया मोह से—
बैठे ऋषी थे वे जहाँ।

नाचती गाती वे सब
आईं ऋषी के सामने ।
देखा जब उनको ऋषी ने
हो गए निस्तब्ध वे ।

पूछा तब उनसे ऋषी ने—
'कुछ मुझे बतलाओ तो
कारण आने का यहाँ क्या ?
और कहो तुम कौन हो ?'

हँसके उससे इस तरह
उन सुन्दरियों ने कहा—
'साथ आप आएँ हमारे;
देंगी हम सब कुछ बता !'

जैसे ही पहुँचे नगर में
वर्षा जोरों से हुई ।

टल गया वह काल संकट
और धरती खुश हुई !

देख कर के ऐसी, महिमा—
उसकी राजा खुश हुआ ।
और बेटी उसको देने का
प्रण भी कर लिया ।

महल में आदर से फिर
राजा वह उसको ले गया;
बिठला सिंहासन पै उसको
फिर ब्याह बेटी को दिया !

यों कथा को खतम कर,
दादा ने पोतों से कहा—
'जाके अब सो जाओ तुम
सुन ली शृंगी की कथा।'

रोज के काम

विक्रमादित्य भारी विद्वान् था। उसे विद्वानों पोशाक और दान-कर्ण की विरुदावली मिली थी। उसकी यह विरुदावली देश-देशांतर में विख्यात हो गई थी। कहीं दूर देश में रहने वाला मातृगुप्त नाम का एक विद्वान् यह समाचार सुन कर राज-नगर उज्जैनी आया।

एक दिन मातृगुप्त राज-सभा में पहुँचा। मातृगुप्त को मालूम था कि किसी भी विद्वान को राजा के सामने हाथ जोड़ कर जाने की जरूरत नहीं पड़ती। राजा खुद आ जाता है और उसकी योग्यता की परीक्षा करके उसका उचित सम्मान करता है। यह रहस्य जान कर ही मातृगुप्त ने राजा से कोई याचना नहीं की। सभा में बैठे हुए और विद्वानों के साथ वह नहीं बैठा। अब मातृगुप्त इस चिंता में पड़ा, कि देखें—राजा किस तरह उसकी परीक्षा करता है।

राजा सभा में पहुँचा। मातृगुप्त को देखा। उसने सोचा—'यह सिर्फ कवि ही नहीं जान पड़ता है! यह तो कोई भारी गुणवान व्यक्ति है। इसकी यह गम्भीरता ही बताए दे रही है।' यह सोच कर उसने मातृगुप्त की परीक्षा लेने का निश्चय किया। यह निश्चय करके उसे आश्रय तो दिया; लेकिन कोई स्वागत-सत्कार नहीं किया।

मातृगुप्त राज-भवन में रहने लगा और साथ ही यह सोचता रहा कि राजा उसे किस कसौटी पर कसता है! उसके भोलेपन को देख कर सभा में सब लोग सोचने लगे —'कौन है यह पागल ब्राह्मण!'

सभा का विदूषक मातृगुप्त को लक्ष्य करके हास्य-परिहास करने लगा। द्वार-पाल भी उसकी चुटकी लेने लगा। लेकिन मातृगुप्त ने किसी की कोई परवाह न की।

सतीश नारायण

दरअसल वह अपनी चिंता में तथा अपनी भावना में इस तरह डूबा हुआ था कि दूसरी ओर नजर उठा कर भी नहीं देखता था। अपनी विद्वता वह किस प्रकार राजा के सामने प्रकट करे इसी चिंता में उस का एक साल बीत गया।

एक रोज विक्रमादित्य भ्रमण के लिए निकला तो उस के सामने मातृगुप्त दीख पड़ा। वह अत्यंत दुबला-पतला हो गया था, और मैला-कुचैला दीख पड़ता था। उसका मुख अत्यंत उदास था।

राजा सोचने लगा—'यह बेचारा परदेशी पंडित-विद्वान् यहाँ अकेला और निस्सहाय स्थिति में पड़ा हुआ है; यह जान कर भी मैं ने एक साल से इस की कोई सुधि न ली। जाने इसे कितना कष्ट हो रहा होगा। अब जरा भी देर करना उचित नहीं होगा!' इस प्रकार मन ही मन सोच कर राजा यह उपाय ढूँढ़ने लगा, कि कैसे इस का मान-सम्मान किया जाय। तत्काल उसे कोई उपाय सूझ नहीं पड़ा।

जाड़े का समय था, कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। आधी रात के समय हठात राजा की नींद खुल गई। कमरे में दीपक जल रहे थे। कमरे को गरम रखने के लिए अंगीठियों में भी आग जल रही थी। ठंडी हवा के झोंकों के कारण बाहर की दीप-शिखाएँ काँप रही थीं। 'कौन है वहाँ!' राजा चिल्ला उठा। कोई जवाब न मिला। पहरेदार सब गाढ़ी नींद में बेखबर पड़े हुए थे।

'महाराज!—मैं हूँ मातृगुप्त....' यह कंठ-स्वर राजा को सुन पड़ा। राजा ने उसे अपने पास बुला लिया। जाते हुए मातृगुप्त बुझती हुई बत्तियों को उकसाता गया। इस के बाद उसने कहा—'आज्ञा महाराज!' मातृगुप्त जाड़े में थर-थर काँप रहा था।

इसके साथ—'राजा ने उसे इस असमय में क्यों बुलाया इसकी चिंता भी उसे खाए डाल रही थी।

'रात अब और कितनी बाकी है? सवेरा होने में कितनी देर है?' राजा ने पूछा।

'रात अब सिर्फ एक पहर बाकी रह गई है' मातृगुप्त ने जवाब दिया।

'सवेरे को तुमने अच्छी तरह पकड़ा है; क्या रात में सोते नहीं हो?' राजा ने फिर से प्रश्न किया।

इसके जवाब में मातृगुप्त ने वहीं के वहीं एक सुन्दर श्लोक रच कर सुना दिया।

उस श्लोक का मतलब यह था—'महाराज, विचार—सागर में मैं डूबा हुआ हूँ। ठंडी हवा के कोड़े सटासट लग रहे हैं। ओढ़ने के लिए कपड़े न होने के कारण आग जला कर ताप रहा हूँ। लेकिन मेरे अभाग्य से वह भी बुझती जा रही है। फूँक न सकने के कारण दाँत कटकटा रहे हैं। भूख और प्यास के कारण कंठ सूख गया है, और जीभ तालू से सट गई है। मेरे ऊपर कुछ ख्याल होने के कारण निद्रा देवी मुझे छोड़ कर चली गई; लेकिन रात उसी तरह अचल हो कर बैठी हुई है!'

यह सुन कर महाराज को कितनी खुशी हुई, इसे कह कर बताया नहीं जा सकता। राजा ने उसे अपने घर जाने की आज्ञा दे दी, लेकिन यह भी कह दिया कि जाने के पहले वह दरबार में हम से मिल ले।

महाराज से बात कर आया, इसके लिए वह अपने भाग्य को कोसने लगा—'मेरी इस असहायावस्था को देख कर भी राजा ने उसे दूर करने का कोई उपाय नहीं किया। अब वह और क्या करेगा—इसकी आशा ही बेकार है! यहाँ एक साल बीत गया; मेरे धैर्य की परीक्षा हो गई; अरमान सब उड़

गए ।' इस प्रकार सोच कर मातृगुप्त ने दूसरे दिन सवेरे ही विक्रमादित्य का आश्रय छोड़ कर चले जाने का निश्चय कर लिया।

दूसरे दिन सवेरे—

निराशा से भरा, दुबला-पतला बना हुआ वह विद्वान्, उदास-मुख लिए आया और उसने राजा को अभिवादन किया। 'ऐ कवि-कुल चूडामणि! कष्ट का ख्याल न करके तुम यह मेरा आज्ञा पत्र ले जाओ, और काश्मीर देश के प्रधान-मन्त्री के हाथों में दे दो। यह एक भारी गुप्त-पत्र है! किसी के हाथ में पड़े बिना बड़ी होशियारी से इसे मन्त्री के पास पहुँचाना। खूब होशियार रहना—यह महाराज की आज्ञा है!' ऐसा कह कर वह पत्र उसके हाथ में रख दिया।

पत्र लेकर मातृगुप्त ने राजा से विदा ली। अब उसके मन का कष्ट और भी ज्यादा हो गया। उसने सोचा—'अरे, यह मेरा कैसा दुर्भाग्य है कि राजाश्रय में आकर कोई मान-सम्मान तो पाया नहीं, उल्टे हरकारे की तरह चिट्ठी पहुँचाने का काम सौंप दिया गया है। ऐसा अपमान देख कर मातृगुप्त राजा और राज्य के कर्मचारियों को कोसने लगा।

जो भी हो, अनेक कष्ट झेलते हुए मातृगुप्त काश्मीर राज्य की सीमा पर 'कामबूर' नामक नगर में पहुँचा। गाँव के बाहर ही उसे एक डेरा दीख पड़ा। वहाँ काश्मीर राज्य के मंत्री भारी स्वागत सत्कार के लिए एक बड़े जलसे-जुलूस के बीच किसी के आने की राह देख रहे थे। मातृगुप्त ने अपने कपड़े बदले और कुछ साफ़ सुथरा मालूम होने के लिए कुछ धो-पोंछ कर राजा का पत्र हाथ में ले लिया और जाकर काश्मीर राज्य के मंत्री के हाथ में देने को तैयार हुआ।

विक्रमादित्य महाराज के पास से कोई दूत आया है—द्वारपाल ने यह समाचार जा कर मंत्री से निवेदन किया।

चारों ओर से मंत्री और सामन्त दौड़ कर मातृगुप्त के सामने आ गए और उसकी अनेक तरह से स्तुति-पूजा करके मान-सम्मान के साथ उसे ऊँचे आसन पर बिठा दिया।

यह आदर-सत्कार क्यों हो रहा है—मातृगुप्त को इसका रहस्य कुछ भी नहीं मालूम हुआ! दरिद्र कवि शर्म के मारे जमीन में धँसा जा रहा था।

इसके बाद राजोचित-सम्मान के साथ उसका अभिषेक किया गया। चन्दन तिलक लगाए गए। नवरत्नों से खचित भूषणों से अलंकृत करके उसे स्वर्ण सिंहासन पर बिठा दिया गया। इस प्रकार राज्याभिषेक करने के बाद प्रधान मन्त्री ने उस विद्वान् को संबोधन करके कहा—'महाराज! हमारे इस काश्मीर राज्य के लिए एक योग्य राजा की जरूरत थी: उस पद के लिए हमने महाराज विक्रमादित्य से प्रार्थना की थी। उन्होंने इसके लिए आपको ही हमें प्रदान किया है। अब से आप ही इस देश के महाराज हैं!'

मातृगुप्त को यह सब स्वप्न-सा मालूम हुआ। वह विक्रमादित्य की अद्भुत प्रज्ञा, उसकी अगाध उदारता को याद करता तन्मय हो गया! महाराज के प्रति अपनी कृतज्ञता जताने के लिए उसने एक अच्छा श्लोक रच कर भेज दिया।

मातृगुप्त जब राजा हुआ तो प्रजा की भलाई के लिए प्रजा की इच्छानुसार राज्य करने लगा। इतना ही नहीं—विद्वानों के सत्कार में गुप्त-दान देकर उसने महाराज विक्रमादित्य का अनुसरण करना शुरू कर दिया।

राम नवमी

दुनिया को दुःख देने वाला लंका-द्वीप का राजा रावण एक दिन अपनी पटरानी मंदोदरी के साथ पुलस्त्य मुनि को देखने गया। जिस समय पुत्र और पुत्र-वधू आश्रम में पहुँचे; पुलस्त्य मुनि कोई काव्य पढ़ रहे थे। यह देख कर रावण ने पूछा—'यह किसकी गाथा है?' इस के जवाब में पुलस्त्य मुनि ने कहा, 'यह रामायण है। इसे वाल्मीकि मुनि ने लिखा है। इसकी विचित्रता यह है कि इसमें अभी तक जो घटनाएँ हो गई हैं उसके वर्णन के सिवा भविष्य में होने वाली घटनाओं का वर्णन भी है।'

'वह होने वाली घटना क्या है? मुझे भी कुछ सुनाइये न!' रावण ने मुनि से कहा।

'विष्णु भगवान भू-लोक के राजा दशरथ के घर में पुत्र के रूप में पैदा होंगे और युद्ध में रावण का संहार करेंगे।'

उनकी बातें ध्यान से महारानी मंदोदरी सुन रही थी। हठात् वह काँप उठी और आतुरता से अपने स्वामी से पूछ बैठी—'रावण का नाम ले रहे हैं! कहीं हमारे दुर्भाग्य से वह रावण आप ही तो नहीं हैं?' यह सुन कर पुलस्त्य मुनि बोले—'दुनिया में दो रावण नहीं। ऐसा कहने से हमारा यह रावण ही माना जाएगा—समझीं!'

यह बात सुनते ही महारानी मंदोदरी अपने ऊपर आने वाली आपदा की बात सोच कर दुःख करने लगी।

रावण ने हँस कर कहा—'दशरथ तो कोई आदमी ही होगा; और मैं तो मनुष्य को खा जाने वाले राक्षसों का राजा हूँ। मुझे मारेगा दशरथ का वह बेटा! इस गपड़चौथ गाथा पर विश्वास मत करो।' यह

कुमारी उर्मीला

सुनकर पुलस्त्य मुनि ने कहा—'यह गपड़ चौथ गाथा कदापि नहीं हो सकती!'

'तो फिर एक काम किया जाय' रावण ने कहा।

'क्या?' मंदोदरी ने पूछा।

'वह दशरथ नाम वाला आदमी तो कहीं-न-कहीं पैदा हो गया होगा ही। उस को पकड़ कर हम मार डालें, तो फिर उस के पुत्र कहाँ से पैदा होगा और वह कहाँ से मुझे मारेगा?' रावण ने कहा।

बस, फिर वह पिता से विदा लेकर पत्नी के साथ लंका लौट आया, और अपने दूतों को बुला कर कहा—'जाओ, फौरन पता लगाओ कि दशरथ नाम का कोई आदमी कहीं है क्या? और उसके कोई पुत्र भी है क्या?'

कुछ दिनों के बाद वे दूत सब लौट आए और कहने लगे—'महाराज हेमपट्टन का राजा है हरसेन। उसने कौशल देश के राजा, और कैकई देश के राजा को हरा दिया। कौशल देश के राजा के कौशल्या नाम की और कैकेई देश के राजा की कैकेई नाम की पुत्रियाँ हैं। हरसेन उन दोनों बालिकाओं को हेमपट्टन ले गया और अपनी पत्नी को दे कर बोला—'इन लड़कियों को तुम अपनी बेटी सुमित्रा के साथ पालो, फिर अच्छा-सा घर देख कर तीनों की शादी एक साथ कर देंगे।'

यह सुन कर रावण बोला—'मैं ने तो तुम्हें दशरथ का समाचार लाने को भेजा था, और तुम हेमपट्टन की बातें सुना रहे हो!'

इस पर दूतों ने कहना शुरू किया—'महाराज सुनिए! उन तीनों लड़कियों में सब से बड़ी जो कौशल्या है उसकी शादी जिस के साथ होने वाली है: वह है दशरथ।' इस पर रावण ने पूछा—'तो फिर शादी कब है?'

इस पर दूतों ने जवाब दिया—'जमदग्नि नाम के एक महर्षि इसी बीच मुहूर्त ठीक करके चले गए हैं: और भी एक विचित्र बात हम ने सुनी....'

'वह क्या?' रावण ने पूछा। 'सुमित्रा और कैकेई के लिए भी जब वर खोजा जाने लगा, तब उन दोनों लड़कियों ने अपने पिता से इस प्रकार अनुरोध किया—'हम तीनों बहनें एक साथ पली और बढ़ी हैं। इस लिए हम दोनों की शादी भी उसी व्यक्ति से कर दी जाय जिस के साथ कौशल्या बहन की करने जा रहे हैं। इस लिए सुमित्रा और कैकई की शादी भी दशरथ से होने जा रही है—ऐसा सुनने में आया है।

'यह शादी रोक देनी चाहिए!' कहते हुए रावण राज-सभा से उठा और हेमपट्टन के राजा हरसेन पर आक्रमण कर बैठा।

रावण ने युद्ध में उस राजा को हरा दिया और विजय-गर्व से झूमते हुए अंतःपुर में प्रवेश किया और तीनों राजकुमारियों को पकड़ कर अपने रथ में बिठा लिया। 'अब दशरथ की खबर ली जाय!' इस उद्देश्य से वह उसकी राजधानी अयोध्या नगर की ओर अपना रथ हाँक ले चला। रास्ते में गंगा नदी आ खड़ी हुई। नदी किनारे एक सुन्दर नाव दीख पड़ी—'किस की है यह नाव?' यह सवाल सुन कर एक मल्लाह उस के सामने आ खड़ा हुआ और बोला—'यह हरसेन महाराज की नाव है। उनकी लड़की की शादी होगी, और उनके दामाद दशरथ महाराज शादी करने आएँगे और इसी नाव पर नदी पार करेंगे।'
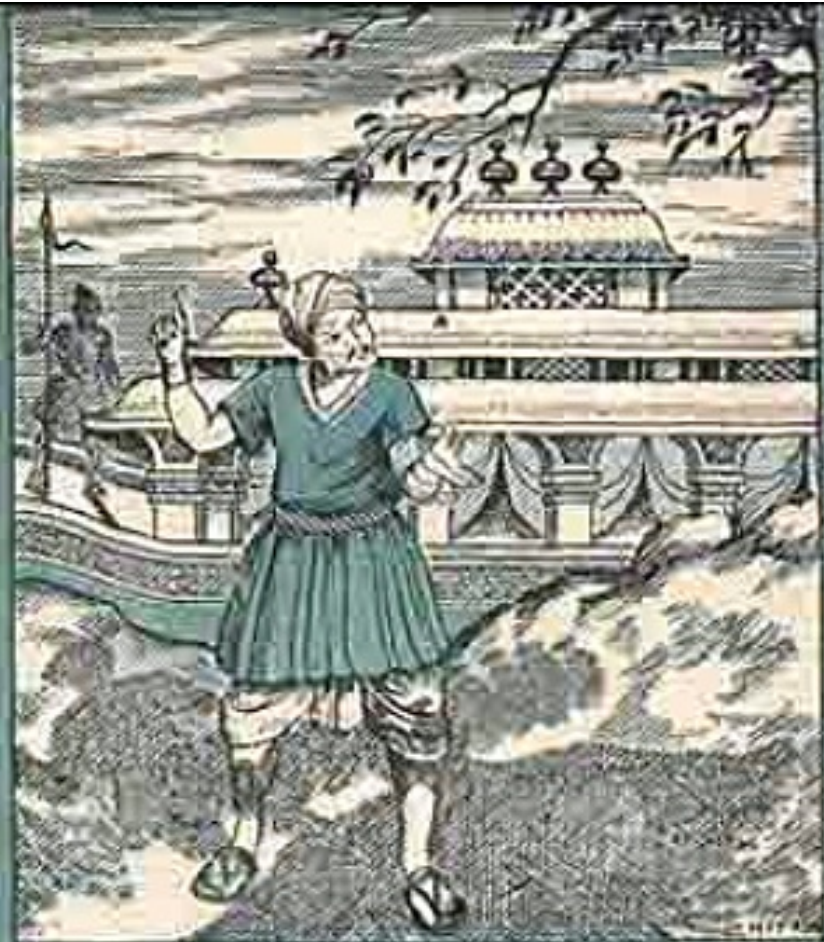
यह बात सुनते ही रावण के मन में एक विचार आया—'इन आदमियों के मारने के लिए मैं खुद अयोध्या क्यों जाऊँ! उन दुर्बल देहधारियों को मारने को तो केवल मेरे सेवक
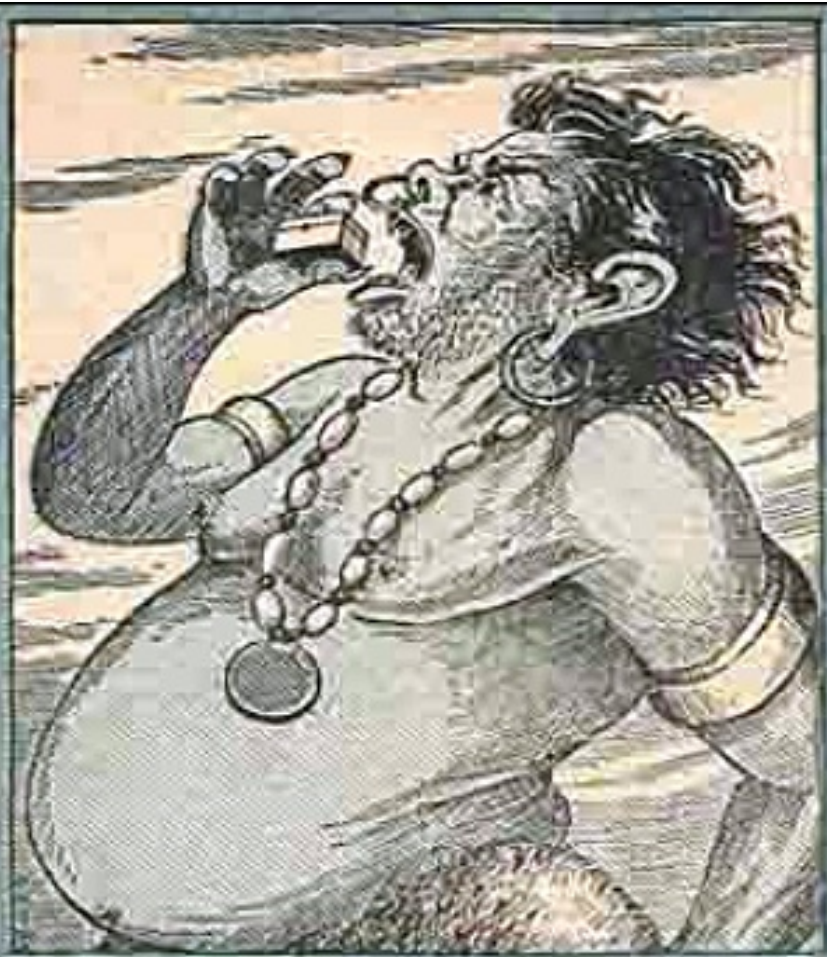
ही फाँसी हैं!' यह सोच कर रावण ने अपने मायावी राक्षसों को बुला कर कहा—'तुम लोग इन सब मल्लाहों को मार कर खा जाओ, और फिर इनका रूप धारण करलो, और दशरथ के आने पर उस को अपनी नाव पर चढ़ा लो, और जैसे ही नाव बीच धारा में आए, वैसे ही उसे डूबा डालो।'

मल्लाहों को ऐसी आज्ञा देकर राजकुमारियों को साथ लिए रावण लंका पहुँचा। लड़कियों को देख मंदोदरी ने पूछा—'ये किसकी लड़कियाँ हैं?' यह सुन कर रावण ने कहा—'दशरथ के लिए तो मैंने नदी-गर्भ की सेज तैयार कर दी है। वह उसी में सो जाएगा। उसकी शादी आज या कल गंगा नदी के गर्भ में ही होगी। उसी मुहूर्त में मैं इन तीनों लड़कियों से शादी कर लूँगा।'

मंदोदरी ने सिर धुनते हुए कहा—'अरे! जो तुम्हारे कुल-नाश के लिए पुत्र पैदा करने वाली हैं, उन्हीं से तुम विवाह करने जा रहे हो! क्या बुद्धि भ्रष्ट हो गई है? नागिनों के साथ खेलना चाहते हो?'

कुछ देर सोचने के बाद रावण ने विवाह करने का निश्चय छोड़ दिया। इसके बाद लकड़ी का एक बड़ा सन्दूक मँगा कर तीनों राजकुमारियों को उसने उस में बन्द कर देने की आज्ञा दी। फिर उसके सामने एक समस्या आ खड़ी हुई, कि इस सन्दूक को छिपा कर कैसे और कहाँ रखा जाय? उसी समय रावण को विकर्ण नाम का एक मायावी राक्षस याद आ गया। वह विकर्ण उस सोमकासुर का बेटा था जिस ने वेदों को उठा ले जा कर ब्रह्मदेव को बहुत रुलाया था और जिस को मारने के लिए ही विष्णु भगवान को मत्स्य अवतार लेना पड़ा था।

विकर्ण के आते ही रावण ने उसे वह सन्दूक दिखा कर कहा—'इसे ले जा कर

होशियारी से रखो; फिर जब मैं माँगू तो ला कर दे देना।'

विकर्ण ने—'जो आज्ञा महाराज' कह रावण के देखते - देखते उस सन्दूक को उसने अपने पेट में रख लिया—'अब तो इसकी भनक भी किसी को नहीं मिलेगी' ऐसा कह वह अपने निवास-स्थान समुद्र को चला गया।

उधर—दशरथ का दूल्हा बन कर गाजे-बाजे के साथ गङ्गा नदी के तट पर आना और नाव पर चढ़ना, रावण की आज्ञा से उन मायावी नाविकों के द्वारा नाव का खेया जाना—यह सब बातें यथा प्रकार हुईं।

लेकिन जिसकी आयु प्रबल होती है, डुबो दिए जाने पर भी नहीं मरता है! धारा में बह कर समुद्र में आए हुए, और लहरों के थपेड़ों से ऊब-डूब होते दशरथ को श्री गणेश दीख पड़े।

गणेश महाराज किसी काम से समुद्र में रहने वाले वरुण-देवता के पास गये थे और वे वहाँ से कैलाश को लौट रहे थे। अधमरे दशरथ को घसीट कर किनारे पर ले आए और उसके पेट को मल-मल कर जितना पानी अन्दर था, सब को बाहर निकाल डाला। ऐसा करने से दशरथ के प्राण बच गए और कैसे विवाह करने जाकर वह मौत के मुँह में पड़ा, सब बातें गणेशजी को सुना दीं। यह सब सुन कर गणेश देव ने मीन-मेख का हिसाब लगा कर कहा—'जमदग्नि महर्षि ने विवाह का जो मुहूर्त ठीक किया था, वह कुछ ही देर में आने वाला है!'

गणेश देव जब इस तरह कह रहे थे कि लहरों पर बह कर एक सन्दूक वहाँ आया। उसे खोल कर देखा तो उसमें दशरथ की दूल्हनें बैठी दीख पड़ीं। यह देख कर गणेश महाराज ने कहा—'देख ली, मेरी ज्योतिष-विद्या कैसी है!' यह कह कर

उन्होंने वेद-विधि से दशरथ का विवाह संस्कार पूरा कर दिया। फिर वायु देव की सहायता से उन सबों को अयोध्या पहुँचा कर खुद कैलाश लौट गए।

समुद्र में होने वाले उस विवाह को दो तिमिंगल मछलियों ने देखा। नर-तिमिंगल ने मादा-तिमिंगल से कहा—' देखा! रावण ने कितनी कोशिश की लेकिन क्या वह इस विवाह को रोक सका?'

'तो वह लकड़ी का सन्दूक कहाँ से आया?' मादा-तिमिंगल ने पूछा।

'वह विकर्ण के पेट से निकल आया। रावण की आज्ञा से उसने उसे अपने पेट में छिपा रखा था। बस, पेट में भयंकर दर्द शुरू हुआ और उसे सन्दूक निकाल ही देना पड़ा। इस के बाद उसे नींद आ गई। तब तक वह सन्दूक लहरों पर चढ़ कर यहाँ आ गया' नर-तिमिंगल ने कहा।

'अरे! जब रावण यह सुनेगा तो उस बेचारे को मार न डालेगा?' मादा-तिमिंगल ने पूछा।

'विकर्ण के मरने से समुद्र की पीड़ा ही मिट जाएगी। इस दुष्ट राक्षस के लिए हमें कोई सहानुभूति नहीं दिखानी चाहिए और रावण को यह बात मालूम ही होने नहीं देना चाहिए। उसे तो इसी भ्रम में रखना चाहिए, कि दशरथ मर गया; और राजकुमारियाँ अभी तक विकर्ण के पेट में बन्द हैं!'

फिर नर-तिमिंगल ने कहा—' इन राजकुमारियों में से ज्येष्ठ राजकुमारी है कौशल्या। उसके गर्भ से श्री रामचन्द्र के रूप में विष्णु भगवान अवतार लेंगे और लोक की भलाई के लिए इस दुष्ट रावण का वध करेंगे।'

रामायण में जैसा लिखा था, वैसा ही हुआ। चैत्र शुक्ल नवमी के दिन भू-लोक में श्री रामचन्द्र ने अवतार लिया। उन्होंने रावण को मार कर समस्त-लोक का कष्ट दूर कर दिया।

5

[कुंडल्नी द्वीप के राज-कोष में धन संचय करने केलिए कुंडल्नी द्वीप के सैनिक दूसरे राज्यों में लूट-मार करने केलिए गए। रवाना होने के समय एक पुच्छल तारा दीख पड़ा; जो अपशकुन का चिन्ह था। समुद्र के बीच पहुँच कर जहाज डूब गए। समरसेन और कुछ सैनिक एक द्वीप में पहुंचे वहां भयंकर जानवरों, एकाक्षी और चतुर्नेत्र मांत्रिक से उनकी भेंट हुई—आगे पढ़िए:]

समरसेन और उसके सैनिक-गण उसी तरह झाड़ी की आड़ में छिप कर झांक रहे थे। तालाब में कोई एक आदमी खड़ा हुआ-सा उन्हें स्पष्ट मालूम होने लगा था। उस आदमी की ओर गौर से देखने से ऐसा दीखता था जैसे वह एक टोपी पहने हुए हो; और उस टोपी के अग्र भाग में, दो नेत्रों से चिन्ह बने हुए थे। उन चिन्हों से एक प्रकार की कांति बाहर निकल रही थी।

समरसेन पहले ही समझ गया था, कि यह आदमी उस एक आँख वाले मांत्रिक का जानी दुश्मन चतुर्नेत्र ही है। प्रचण्ड शरीर और छोटे-से सिर वाले उस विचित्र जीव ने जब यह देखा कि वह जानवर उसी को निगलना चाहता है तो उसने कहा—'उफ़! इस चतुर्नेत्र को ही तू निगलना चाहता है? यही न!' अब समरसेन को मालूम हो गया कि उसी का नाम चतुर्नेत्र है। 'तो अब इसकी आँखों में पड़े बिना

कैसे बच कर भागा जाय?' समरसेन अब इस चिंता में पड़ा। यों जब वह इस चिंता में पड़ा ही हुआ था कि उसके एक सैनिक ने कहा—'सरदार, हमारी तरह दो आँख के बदले इसके चार आँखें मालूम होती हैं!' इतने में एक दूसरा सैनिक बीच ही में नाराज होकर गुस्से से बोल उठा—'मालूम क्या तुम्हारा सिर? स्पष्ट ही तो दीख रहा है। इसके सिवा उसका नाम ही चतुर्नेत्र है!'

एक ओर समरसेन यह सब सुन रहा था; दूसरी ओर सोचता भी जाता था। फिर सहसा रुक कर उसने अपने सैनिकों से सवाल किया—'यह चतुर्नेत्र उस एकाक्षी मांत्रिक का जानी-दुश्मन ही है न?'—इसके जवाब में सब सैनिकों ने एक स्वर में कहा—'हाँ हाँ, जानी-दुश्मन तो है ही!'

इतने में उन में से एक को कुछ सन्देह हुआ, उसने कहा—'सरदार! अगर आप गलत न समझें तो मैं एक बात पूछूँ!'

'निर्भय हो कर पूछो जो पूछना चाहते हो। तुम ही नहीं और भी जो पूछना चाहता है शौक से पूछे। ऐसे कठिन प्रसंग में एक आदमी की बात पर चलने की अपेक्षा चार आदमी मिल कर सोच-विचार कर, निश्चय करके चलें, यही सर्वोत्तम है!' समरसेन ने लोगों का साहस बढ़ाया।

यह सुन कर उस सैनिक ने कहा—'आप का अभिप्राय यह मालूम होता है कि चतुर्नेत्र और एकाक्षी मांत्रिक में जो बैर-विरोध है उसका उपयोग हम अपनी भलाई के लिए करें। लेकिन इस में मेरी एक बात है: सिंह-बाघ परसपर दुश्मन होते हैं; लेकिन होते ये दोनों खूँखार जानवर हैं। यह तो हम कभी भूल नहीं सकते हैं।'

समरसेन फिर विचार-सागर में गोते खाने लगा—'तुम्हारी बात सही है'

निस्तब्ध हो कर उसने कहा—'यह लोग बड़े गजब के मांत्रिक है दुष्ट जन्तुओं को अपने वश में करके रखने वाले हैं। लेकिन इनमें अपस में विरोध क्यों है! इसका पता हमें नहीं लगता है। धन-राशि से भरी हुई वह नाव, और नाव की रक्षा करने वाली वह नाग-कन्या—इसका रहस्य हमें नहीं मालूम होता है। मुझे तो यह सन्देह पकड़े हुए है कि इस भयंकर द्वीप में इनको इतने धन की क्या जरूरत है!' यह कहते-कहते तालाब से निकल कर चतुर्नेत्र किनारे पर आ गया। चार-एक कदम चल कर रुका और जहां समरसेन और उसके सैनिक छिपे हुए थे उस झाड़ी की ओर गौर से देख कर हँसते हुए बोल उठा—'अरे भाइयो, आओ-आओ! यहां आओ!!' यह कह कर वह खिल-खिलाने लगा।

समरसेन और उसके सैनिक थरथराने लगे। पहले तो भाग जाने का ख्याल हुआ; एक कदम रखा, दूसरा कदम डालने वाले ही थे कि चतुर्नेत्र का कांसे सा झंझनाता स्वर सुनाई पड़ा।

'अरे पगलो, मेरी ही आंखों में धूल झोंकना चाहते हो! ऊँहुं! तुम से यह

सम्भव नहीं हो सकता। ये पेड़-पौधे, पहाड़-पहाड़ियाँ, दर्रे-घाटियाँ मेरी दृष्टि पर पर्दा नहीं डाल सकते हैं। इन सब को भेद कर चली जाएगी मेरी दृष्टि। एक क्षण में तुम समझ जाओगे—ज़रा ठहरो बुलाता हूँ' ऐसा कह कर वह चिल्ला उठा—'कहाँ गया रे उल्लू! कहाँ है रे नर-वानरा!!'

वह पुकार सुनते ही काला उल्लू और नर-वानर दौड़े-दौड़े आए और समरसेन का रास्ता रोक कर खड़े हो गए। नर-वानर हाथ में एक पेड़ की डाली लेकर हिलाने लग गया। उल्लू आसमान पर उड़ते हुए अत्यंत कठोर स्वर में चीखने लगा।

सारी परिस्थिति समरसेन की समझ में आ गई। यह साफ़ समझ में आ गया कि वे लोग इस समय अत्यंत असहायावस्था में हैं। उनके हाथ में जो अस्त्र-शस्त्र थे, उन के सामने वे घास-पात के बराबर भी नहीं थे। इसलिए सैनिकों के कलेजों की धड़कन को कम करने के लिए उसने कहा—'जब तक हमारी कुंडलनी देवी हम पर सहाय हैं, तब तक किसी का क्या डर! हमारा सब भार उन्हीं के ऊपर है। इस समय भी हम उन्हीं की शरण में हैं।

सैनिक सब निश्चेष्ट खड़े रह गए। चतुर्नेत्र धीरे-धीरे एक-एक कदम बढ़ाता हुआ उन के पास पहुँचा, और बड़े ही मुलायम स्वर में पूछने लगा—'कौन हो तुम लोग! इस द्वीप में क्यों आए हो!' उसकी मुखाकृति में कठोरता या व्यंग का कोई चिन्ह नहीं दीखता था। वह एक अत्यंत शांत स्वरूप दीख पड़ता था।

चतुर्नेत्र ने जब इस तरह शांत स्वर में प्रश्न किया, तब इन लोगों के खोए हुए हवास फिर लौट आए; वे ज़रा दृढ़ हुए।

लेकिन इस प्रश्न का उत्तर देने में समरसेन को बड़ी हिचक मालूम हुई। आखिर उत्तर देना ही उसे कल्याणकर मालूम हुआ, और यह स्पष्ट दीख रहा था कि उस विचित्र व्यक्ति से कुछ छिपा तो रह सकता नहीं है।

'हम कुण्डलनी-द्वीप के रहने वाले हैं। समुद्र-यात्रा करते-करते तूफ़ान में पड़ कर हम यहाँ पहुँच गए!' समरसेन ने कहा।

चतुर्नेत्र हँस पड़ा—'भाइयो! तुमने जो कुछ कहा उसमें कुछ सचाई तो है अवश्य; लेकिन समुद्र-यात्रा करने की क्या जरूरत आ पड़ी!—यह कारण तो तुमने छिपाया, ठीक है न!' उसने फ़िर से प्रश्न किया।

तब समरसेन ने किसी प्रकार के दुराव-छिपाव के बगैर सारी सच्ची बातें कह सुनाईं। अपने राजा का खजाना खाली होने—उसे फिर भरने के प्रयत्न में सैनिक लेकर निकल पड़ना; यह सब बातें विस्तृत रूप से उसे सुना दीं। यह सब सुन कर चतुर्नेत्र विकट-रूप से अट्टहास कर उठा और बोला—

'आह हा हा हा....! धन की खोज में रवाना हुए और दुर्भाग्यवश तूफ़ान में फँस कर इस मन्त्र-द्वीप में आ पहुँचे हो! बहुत अच्छी बात है। यहाँ एक मान्त्रिक है, उसे भी धन का लोभ बहुत ज्यादा है; अगर तुम दोनों एक हो जाओ....!' वह फिर अट्टहास करने लगा।

अब समरसेन क्या कहे! उसे कुछ भी नहीं सूझता था। उसके इस तरह अट्टहास करने से वहाँ का सारा प्रान्त प्रतिध्वनित हो उठा, और उसमें एक स्वर सुनाई पड़ा। वह एकाक्षी का स्वर था—'कहाँ है रे! काल सर्प! कङ्काल! आओ—खोजो....!'

थर-थर काँपते हुए सैनिकों को ढाढ़स देते हुए समरसेन बोला—'देखो! उस झाड़ी में जा कर छिप जाओ। वह एकाक्षी
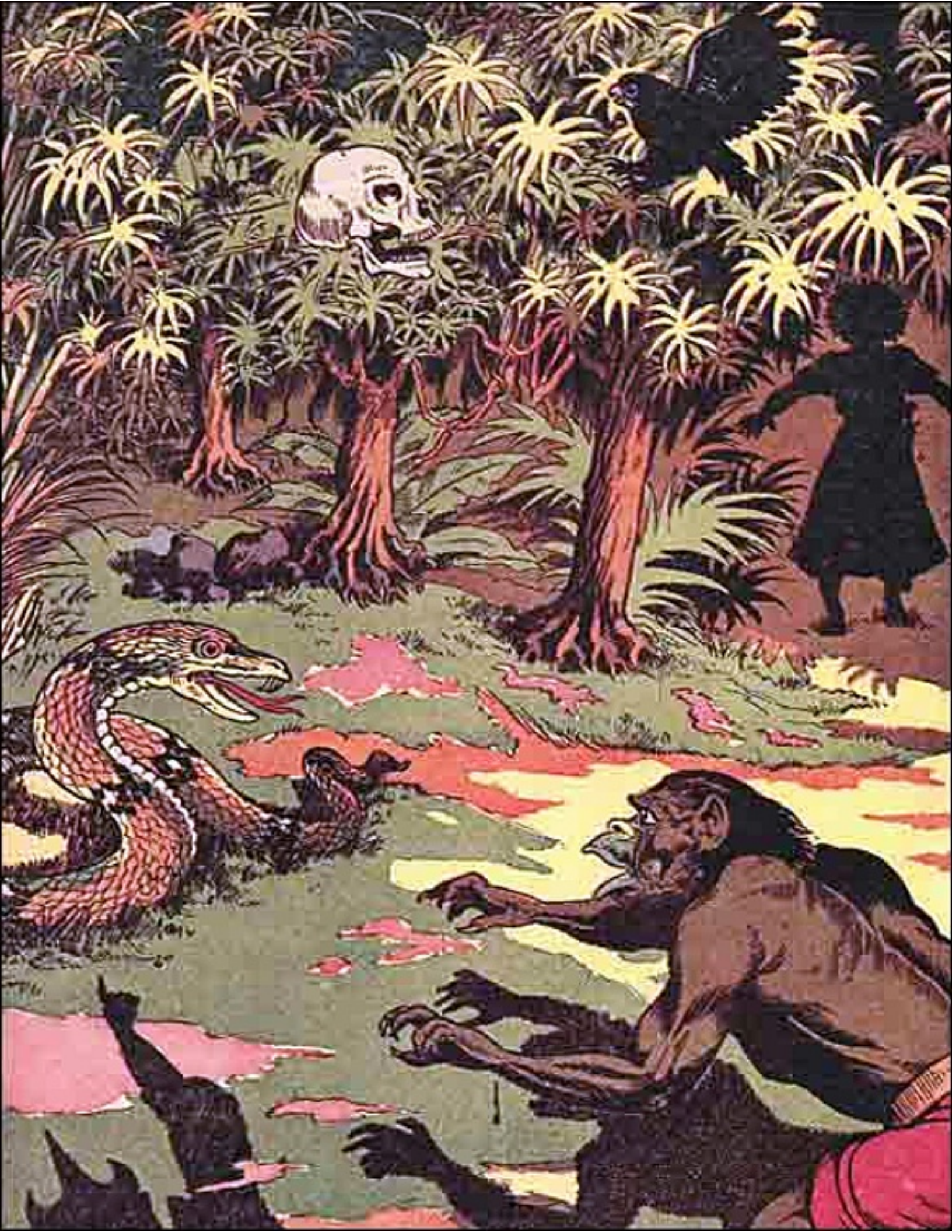
है एकाक्षी....' यह सुन कर सब सैनिक दौड़ कर उस झाड़ी में छिप गए।

उन लोगों का छिपना, और एकाक्षी मांत्रिक का प्रत्यक्ष होना—एक साथ हुआ। काल-सर्प और मानव-कपाल उन के पास ही हिल रहे थे। चतुर्नेत्र को देखते ही एकाक्षी मांत्रिक प्रलय वाली आवाज में अट्टहास करके बोला—'अरे तू कितने दिन के बाद दीख पड़ा! अब तक कहाँ छिपा था!!' कहते हुए उसने सर्र से अपनी तलवार खींच ली।

चतुर्नेत्र जहाँ खड़ा था, वहीं निश्चेष्ट खड़ा रह गया। ...'ओहो! आप हैं एकाक्षी महाराज, आइए! आइए!!' इस प्रकार उसने भयंकर जवाब दिया। उसके बाद शीघ्र ही उसने पुकारा—'कहाँ है रे नर-वानरा! किधर है रे ओ उल्लू!!' उस की यह आवाज सुनते ही उल्लू और नर-वानर उतर आए। उन को देखते ही एकाक्षी मांत्रिक दहल उठा।

यह देख कर चतुर्नेत्र ने कहा—'अरे ओ उल्लू! दाहनी आँख की रुचि तो तुझ को मालूम ही है। अब इस बाईं आँख का भी तू भोग लगा ले!' ऐसा सुनते ही वह उल्लू उस एकाक्षी की ओर झपटा। वह घबरा कर चिल्लाने लगा—'अरे कङ्काल! अरे ओ कङ्काल!!' उस का चिल्लाना सुन कर क्षण-मात्र में एक मानव-कपाल अपना विकराल मुहँ फैलाए हुए सामने आ कर उस उल्लू से मुकाबिला करने लगा।

'अहा हा हा....!' एकाक्षी मान्त्रिक अट्टहास करने लगा। यह देखते ही चतुर्नेत्र उग्र बन गया और चिल्ला उठा—'कहाँ है रे! नर-वानर!' दूसरे ही क्षण में नर-वानर एकाक्षी मान्त्रिक की ओर कूदा। वह मान्त्रिक ज़ोर से चिल्ला उठा—'कहाँ गया

रे ! कालसर्प !' फौरन कालसर्प फन फैलाए हुए नरवानर पर टूट पड़ा !

झाड़ी की आड़ से यह भयङ्कर संग्राम देखते हुए, समरसेन और उसके सैनिकों ने समझा—'बराबरों का मुकाबिला है !' एक सैनिक ने कहा—'इसीलिए तो हम बचे हैं !' समरसेन बोल उठा। एकाक्षी मान्त्रिक और चतुर्नेत्र के दूत-भूतों में बड़ा ही भयङ्कर युद्ध शुरू हुआ। मानव-कपाल ने अपने विकराल-मुख से उस उल्लू को पकड़ने की कोशिश की। नर-वानर को पकड़ने के लिए काल-सर्प घूम रहा था।

चतुर्नेत्र और एकाक्षी मान्त्रिक ने एक दूसरे की ओर ज्वालामय नेत्रों से देखा। दोनों को खूब अच्छी तरह मालूम था कि यह युद्ध शीघ्र समाप्त होने वाला नहीं।

चतुर्नेत्र एक बार अपने सिर से टोपी हटाकर ज़ोर से चिल्ला उठा—'ऊँ, हम !' बस ! ऐसा कहते ही वह अदृश्य हो गया, और फिर तत्काल वह काला उल्लू और नर-वानर भी गायब हो गए। एकाक्षी मांत्रिक ने गंभीर स्वर में कहा—'गायब हो गए हो ! लेकिन देखता हूँ कब तक इस तरह भागते रहते हो....' कह कर वह गरजा। मानव-कपाल और काल-सर्प को साथ लेकर वह वहाँ से चला गया।

'जान बची भाई !' सोचते हुए समरसेन अपने सैनिकों की ओर आया। पूरब की ओर रहने वाले अपने जहाजों की ओर वे लोग रवाना हुए। दस कदम भी न गए होंगे की भूमि के फटने की कड़कड़ाहट सुनाई पड़ी। सुनाई ही क्या पड़ी—सामने के गगन - चुम्बी पहाड़ से उठ कर उड़ती हुई अग्नि - ज्वाला आकाश को निगलने जा रही थी। यह देख कर समरसेन और उस के सिपाहियों के कलेजे धक् से रह गए !

[अभी और है]

क्या तुमको मालूम है ?

★

दुनियाँ का सब से ऊँचा शिखर 'माउन्ट एवेरेस्ट' है जिसको तेनसिंग और हिलेरी ने २७मई १९५३ को विजय किया।

दुनियाँ का सब से बड़ा शहर लंडन है।

दुनियाँ का सब से बड़ा सिनेमा-घर न्यूयार्क अमेरिका में है।

दुनियाँ का सब से बड़ा समुद्री का जहाज 'क्वीन एलिजाबेथ' है। जिसका वजन १८००० टन है।

दुनियाँ का सब से बड़ा रेगिस्तान 'सहारा' (अफ्रिका) में है।

दुनियाँ में सब से ज्यादा वर्षा चीरापूँजी (आसाम में) होती है।

दुनियाँ की सब से बड़ी यूनिवर्सिटी मास्को में है, जो हाल ही में बनी है।

दुनियाँ का सब से पुराना वृक्ष लङ्का में है जो सम्राट् अशोक के समय में लगाया गया था।

सूरज की किरणें धरती पर आठ मिनट में आती हैं।

हिन्दुस्थान में सब से अधिक शिक्षा बम्बई प्रान्त के एक नगर सूरत में पाई जाती है।—वहाँ २७ प्रति शत आदमी पढ़े-लिखे हैं।

दुनियाँ में सब से ज्यादा बोली जाने वाली भाषा अंग्रेजी है और यह भाषा एक साथ बहुत से प्रदेशों की मातृ-भाषा भी है।

दुनियाँ में सब से पहला सिमेंट तुर्की के एक फौजी सिपाही ने बना कर दिया था।

मुख-चित्र

पाँचों पांडवों को, चाहे जैसे भी हो, मार ही डालना चाहिए—दुर्योधन ने यह दृढ़ सङ्कल्प कर लिया था। इस के लिए वह अपने लोगों से हमेशा सलाह लेता रहता था। अनेक प्रकार के उपाय सोचते-सोचते आखिरकार उसने एक अचूक उपाय सोच लिया। वह उपाय क्या था—वह भी सुन लो—

उसने कनक नामक एक बहुत बड़े शिल्पी को बुलवाया और उसके द्वारा एक लाख का घर बनवा लिया। फिर धृतराष्ट्र के द्वारा पांडवों को यह बुलावा भिजवा दिया—'तुम पाँचों भाई आकर इस घर में रहो!' यों पाँचों भाई पांडव आकर बड़ी खुशी के साथ रहने लगे। एक दिन उसने प्रोरोचन नामक अपने एक मित्र के द्वारा उस घर में आग लगा देने का इंतजाम कर लिया।

लेकिन—पांडवों के पक्षपाती विदुर के द्वारा इस कुचक्र का पता भीमसेन को बहुत पहले लग गया था। उसे यह भी मालूम होगया था कि प्रोरोचन कब इस घर में आग लगाने जा रहा है।

यह सब परिस्थितियाँ अच्छी तरह समझ कर वह उस के पहले ही एक सुरंग के द्वारा गाढ़ी नींद में पड़ी हुई कुन्ती देवी को तथा अपने सब भाइयों को लेकर गंगा नदी के तट पर पहुँच गया। वहाँ उन लोगों के लिए एक नाव तैयार थी; उस पर चढ़ कर वे लोग एक सुरक्षित प्रदेश में पहुँच गए। उस के बाद भीमसेन फिर लौट आया और प्रोरोचन के पहले ही उसने उस लाख के घर में आग लगा दी। देखते-देखते वह विशाल घर प्रोरोचन के साथ जल कर खाक में मिल गया।

सवेरा होते ही वहाँ राख ही राख दिखाई पड़ी। दुर्योधन यह सोचकर बहुत खुश हुआ कि 'पांडव भी जल कर खाक हो गए होंगे!' यह भयङ्कर समाचार सुन कर भीष्म आदि अत्यंत दुःखित हुए। सबों के साथ विदुर ने भी दुःखित होने का नाट्य किया। पुरोहित को बुला कर कौरवों ने पांडवों का श्राद्ध भी कर दिया। धृतराष्ट्र ने भी उन लोगों के नाम पर पितृतर्पण कर दिया। लाख-घर के निर्माण के द्वारा पांडवों का संहार करके दुर्योधन फूला न समाया!

पाप का घड़ा फूटा !

परिमल राज्य का राजा था मुक्तवर्मा। उसकी रानी का नाम था प्रेमसुन्दरी।

एक दिन राजा और रानी पैदल ही सैर करने निकल पड़े। वे लोग कितनी दूर निकल गए, इसका पता उन्हें ही न रहा।

जाते-जाते वे लोग जैसे ही खड़े हुए, उन्हें एक खण्डहर किला दिखाई पड़ा। वे दोनों उसके पास पहुँचे। और भी कुछ दूर जाने पर राजा के दोनों पैर जमीन में जकड़ गए ! और देखते-देखते रानी पाँच रङ्ग वाले हीरामन तोते में बदल गई !

राजा हिल-डोल नहीं रहा था, इसलिए उसे अब क्या करना है—यह कुछ भी सोच नहीं सका। वह पाँच रङ्ग वाला पक्षी, राजा के चारों ओर मँडराने लग गया। किले के अन्दर से एक अद्‌भुत स्त्री निकल कर आई। आते ही उसने हीरामन को अपने हाथ में पकड़ लिया। यह देख कर राजा चिल्लाने लगा—'अरी ! तू कौन है ? यह सब माया क्या कर रही है ?'

'अहा ! तुम हो यहाँ के राजा और यह है तुम्हारी रानी ! हा हा....!! छोड़ो ! अब अपनी रानी की आशा छोड़ दो। तुम अपनी राह जा सकते हो; अब कभी भी इधर पैर न रखना। अगर तुम प्रतिज्ञा करो कि यह बात तुम किसी से न कहोगे तो मैं तुम्हें मुक्त कर दूँगी। अगर तुम किसी से कहोगे तो तुम्हारे सिर के दो टुकड़े कर दूँगी !—समझ गए ?' उसने बड़ी भयङ्कर आवाज में गरज कर कहा। उसने अपने

हाथ की लकड़ी से राजा को छू दिया और बस ! राजा के पैर खुल गए। वह चलने फिरने लग गया । तब राजा ने कहा—'जब तक तू मुझे मेरी प्रेमसुन्दरी को लौटा नहीं देती है, तब तक मैं यहाँ से टल नहीं सकता।' राजा ने हठ से कहा।

'तुम्हारी यह हालत है।' ऐसा कह कर उस ने राजा को फिर मंत्र से जकड़ दिया और उस पाँच रंग वाले हीरामन को लेकर किले के अन्दर चली गई।

किले के भीतर—एक बहुत बड़ा कमरा था। उस कमरे में ठीक निन्नानवें पाँच रंगवाले हीरामन तोते थे। उस जादूगरनी ने उन तोतों को फिर से एक बार गिन कर देखा। फिर एक ताड़-पत्र वाले ग्रंथ को हाथ में लेकर कहने लगी—'आहा, आज जा कर मेरा व्रत पूरा हुआ। अब क्या है अब तो अमृत मेरी मुट्ठी में है! अब तो इन्द्र-लोक मेरा है। फिर नया हीरामन जो लाई थी, उस को पिंजड़े में ढकेल कर उस का दरवाजा बन्द कर दिया।

उस के बाद वह भीतर गई और एक बड़ा बर्तन और चमचम चमकती दस कटारियाँ ले आई। फिर किताब देख-देख कर मंत्र पढ़ती हुई एक एक तोते को हाथ में लेती हुई कटारी से उस का गला काट कर उस का रक्त उस बर्तन में भरने लगी। इस प्रकार निन्नानवें तोतों को मार कर उनके रक्त से वह बर्तन भर दिया।

अब एक और तोते को मार देने से उस का व्रत पूरा हो जाता है। इस उत्साह से उस जादूगरनी ने सब से आखिर में जिस प्रेमसुन्दरी नामक तोते को पकड़ा था; हाथ में लिया, और बातें करने लगी।

जादूगरनी यों बातें कर रही थी कि जरा ढीला पा कर वह तोता फुर्र से उड़ा और

अपनी चोंच से उसकी आँखें को भोंकने लग गया। जादूगरनी व्याकुल होकर उस तोते को गाली देने और अपनी आँख मलने लगी इतने में उसने दूसरी आँख में भी चोंच मार दी।

जादूगरनी की दोनो आँखें चली गईं। रोती हुई वह तोते को पकड़ने दौड़ी, लेकिन तोता वहाँ कहाँ था? वह तो फुर से उड़ा और राजा के पास पहुँच गया।

'ठहरो मैं तुम्हारी खबर लेती हूँ.... !' इस प्रकार भन-भनाती हुई निकली वह जादूगरनी। लेकिन सीढ़ी से एक ओर उतरने के बदले उसने दूसरी ओर पैर बढ़ा दिए और वह धड़ाम से नीचे गिर गई। गिरते ही वह बेहोश हो गई। साथ ही उसके हाथ की जादू की लकड़ी जाने कहाँ गिर गई।

उधर नगर में—सैर करने गए हुए राजा और रानी अभी तक नहीं लौटे, यह देख कर मंत्री ने घबरा कर आदमियों को चारों ओर ढूँढ़ने भेजा और खुद भी ढूँढ़ने निकला।

जाते-जाते मंत्री उस किले के पास पहुँचा। उस रास्ते में रोती हुई उस जादूगरनी को आदमी की आहट मिली। उसने ध्यान भर के देख लिया कि यह अमुक आदमी है। उसने उस से कहना शुरू किया—'मंत्री, मैं कौन हूँ तुमने नहीं जाना? मैं ही तुम्हारी रानी हूँ प्रेमसुन्दरी। एक जादूगरनी न मेरी यह हालत कर दी है। मेरे पास यह जादू की एक लकड़ी पड़ी है। एक काम करो—यह लकड़ी लेकर किले के भीतर जाओ। वहाँ एक बर्तन में लाल रस है। एक गिलास में डाल कर ले आओ और मेरे मुँह में डाल दो, तो मैं अपने असली रूप में बदल जाऊँगी। फिर मैं राजा को भी लाकर दिखा दूँगी।' उसके कहे मुताबिक मन्त्री जादू

की लकड़ी लेकर भीतर गया और बर्तन में रखा हुआ रक्त लाकर उसके मुख में डाल दिया।

मुँह में रक्त डालते ही रूप बदलने के बदले वह मरन-वेदना से छटपटाने लगी—'अरे, बड़ा धोखा हुआ! उस प्रेमसुन्दरी ने तो मुझे ही मार डाला। ठीक अब जाकर मेरे पाप का घड़ा फूटा। निन्नानवे स्त्रियों की हत्या का पाप अब जाकर फला!' इस प्रकार वह रुदन कल्लोल करने लगी।

उसका पिता एक ताड़-पत्र के ग्रन्थ में महा-मन्त्र लिख कर छोड़ गया था। उसमें के किसी मन्त्र को करोड़ बार जप किया जाय और पूर्णाहुति के दिन एक सौ स्त्रियों को तोते में बदल कर उनके रक्त से अभिषेक हो और उसका पान भी करले तो अमरत्व प्राप्त होगा। वह जो रूप धारण करना चाहे वह धारण कर सकेगी। वह अमर हो जाएगी-वह कभी नहीं मर सकेगी!'

इस आशा से उसने जो व्रत शुरू किय था, वह दो तरह से नष्ट हो गया। सब से पहले तो आखिरी तोता जो उसके हाथ में आया था, वह प्रेमसुन्दरी उसके हाथ से निकल गई। उसके अतिरिक्त उस तोते ने उसकी आँखें फोड़ डालीं; जिसके कारण दुष्ट-रक्त बर्तन के पवित्र-रक्त में मिल गया और निन्नानवें तोतों का समस्त रक्त अपवित्र हो गया।

यों अपनी बातें मंत्री के सामने रोकर कहती रही। कुछ देर रोने के बाद मन्त्री की तलवार से सिर पटक-पटक कर ढेर हो गई!

इसके बाद—मन्त्री ढूँढता हुआ आ रहा कि जमीन में चिपका हुआ राजा और उसके चारों ओर उड़ता हुआ वह हीरामन उसे दीख पड़े। मन्त्री ने दोनों के ऊपर जादू की लकड़ी फेरी और राजा-रानी को असली रूप प्राप्त हो गया। फिर सब सुख-पूर्वक राज-महल में पहुँच गए।

गाने का चमत्कार

★

हमारे स्कूल के सामने एक अंधा भिखारी गाना सुना कर पैसे माँगा करता था। एक दिन छुट्टी के बाद मैं और मेरा एक मित्र घर जा रहे थे कि मेरे मित्र ब्रजनंदन ने कहा—'आओ मैं तुम्हें एक तमाशा दिखाता हूँ' यह कह कर मुझ को उस भिखारी के पास ले गया और उसके सामने पड़े पैसों में से एक आना उठा कर उसे देते हुए बोला—'बाबा जी! लो यह एक आना।'

भिखारी ने असीस देते हुए कहा—'बेटा एक गाना सुनते जाओ! मैं पैसा देने वाले को एक गाना जरूर सुनाता हूँ।'

ऐसा कह कर उसने गाना आरम्भ किया। जब उस भिखारी ने गाना समाप्त किया तो मेरे मित्र की आँखों में आँसू थे और उसने जेब से आठ आने निकाल कर भिखारी को दे दिए।

लालच बुरी बलाय!

★

बहुत दिन पहले की बात है कि किसी जंगल में एक शिकारी शिकार खेलने गया। इधर-उधर भटकने के बाद उसे एक लोमड़ी दीख पड़ी। उस ने उस को पकड़ने के लिए वहाँ एक गढ़ा खोद कर उस पर कुछ पत्ते बिछा खरगोश का माँस रख दिया, और खुद एक झाड़ी में छिप गया।

थोड़ी देर के बाद लोमड़ी वहाँ आई और खरगोश के माँस को उस प्रकार रखा देखकर समझ गई कि मुझे फाँसने के लिए जाल बिछाया गया है। इसलिए वह उसके पास नहीं आई और वापस चली गई। कुछ देर के बाद वहाँ एक चीता आया—माँस को देख कर उस पर टूटा और गढ़े में आ गिरा। शिकारी समझा कि लोमड़ी गिरी है। इस लिए बिना सोचे-विचारे वह उस में कूद पड़ा और लोमड़ी का शिकार करने जाकर खुद ही चीते का शिकार हो गया। सच है......'लालच बुरी बलाय!'

....जहाँ चोरी नहीं होती हैं !

खोजी महाशय को मिश्र से ईरान आए हुए दस दिन भी न हुए थे, कि तेहरान में उसकी जेब कट गई। कपड़े वगैरह तो मिश्र से आते समय ही चोरी हो गए थे! अब जो नकद उसके पास था, वह भी चला गया। अब उसके पास केवल अपने देश लौटने के किराए के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं रह गया था। इसलिए उसने निश्चय किया कि शीघ्र ही देश वापस चलदेना चाहिए।

इस प्रकार जाते-जाते वह एक समुद्र के तट पर पहुँचा। उस तट-प्रदेश का नाम 'किमाड़ी' था। वहाँ के तट पर चुङ्गी-घर तो बना हुआ था। लेकिन वहाँ न कोई पहरेदार था और न कोई मुन्शी। उसके बदले वहाँ— एक बोर्ड पर लिखा था—'अपना चुंगी टैक्स यहाँ चुका दीजिए!' खोजी को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह चुङ्गी चुका कर बाहर निकला। जाते-जाते उसे एक पत्रिका की दूकान मिली। वहाँ नाना प्रकार की पत्रिकाएँ रखी हुई थीं। लेकिन दूकान पर दूकानदार नहीं दीख पड़ता था। खोजी ने वहाँ पत्रिका खरीदने वालों से पूछा—'यहाँ दूकान पर कोई आदमी नहीं है क्या!' वहाँ खड़े आदमी बोले—'इस प्रदेश में चोरों का डर नहीं, इसलिए बेचने वाला सवेरे यहाँ पत्रिकाएँ और प्याला रख जाता है, और शाम को जब काम करके लौटता है तो बची हुई पत्रिकाएँ और पैसे उठा ले जाता है।'

खोजी ने प्याले में पैसे डाल कर एक पत्रिका उठा ली। जब वह पत्रिका को खोल कर पढ़ने लगा तो एक बात पर उसकी दृष्टि जम गई। वह बात यह थी की —'कल किसी व्यक्ति की जेब से दो रुपए गिर गए और उस को कुछ मालूम ही नहीं

सूरज प्रकाश

हुआ। दूसरे दिन सबेरे उसने वहाँ आकर देखा तो वे रुपए वैसी ही जमीन में चमचमा रहे थे!'

यह समाचार पढ़ कर खोजी आश्चर्य में डूब गया और सोचने लगा—'यह विचित्र-प्रदेश कैसा है!' ऐसा सोच कर खोजी आगे बढ़ गया और खूब सैर-सपाटा करता रहा। शाम को जब वह एक बड़े होटल में पहुँचा तो वहाँ भी उसे वही विचित्र दृश्य दीख पड़ा—नाना प्रकार के भोजन तश्तरियों में सजे-सजाए रखे हैं और हरेक पर उसकी कीमत भी लिखी हुई है! लेकिन वहाँ भी कोई आदमी नहीं है। लोग अपनी पसंद की चीज उठाते हैं और पैसे प्याले में डाल देते हैं। खोजी ने भी प्याले में दाम डाल कर एक तश्तरी ले ली, और खा कर सैर को निकल गया।

श्री खोजी उस प्रदेश में एक सप्ताह तक रहा और फिर वह अपने देश लौटने को तैयार हुआ। लेकिन जब वह अपने जहाज पर पहुँचा, तो देखा—वहाँ एक भी समान नहीं था। अब तो खोजी महाशय के हाथों के तोते उड़ गए! अब वह सोचने लगा, कि क्या करे! क्योंकि उस प्रदेश में पुलिस का कोई थाना भी नहीं था और न कहीं पर कोई सिपाही ही दीख पड़ता था।

आखिरकार वह जहाज के कप्तान के पास पहुँचा और सारी बातें खोल कर उसे बता दीं। उसकी बातें सुन कर कप्तान ने कहा—'खोजी जी! अब क्या हो सकता है! इस प्रदेश में चोरी तो होती ही नहीं है—इसलिए रपट कैसे की जाय? अब आप भगवान का नाम लीजिए!'

यह सुन कर खोजी गुस्से से कुछ कहने ही वाला था कि जहाज के भोंपू से उसकी नींद खुल गई और उसने देखा कि वह 'किमाड़ी' प्रदेश— जिसमें चोरी का नामो-निशान नहीं—केवल एक स्वप्न था!!
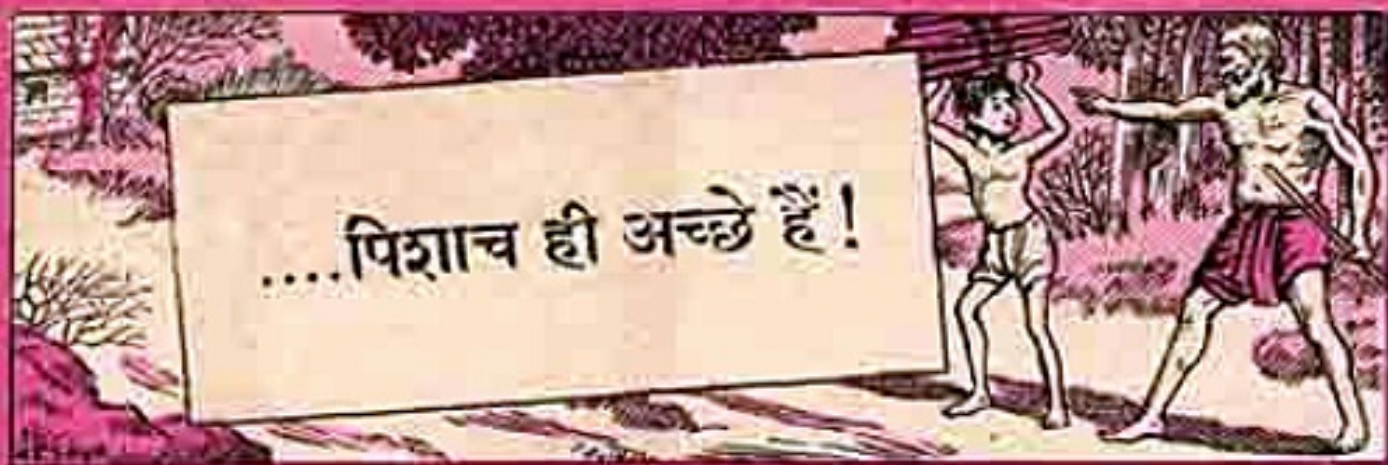
बहुत दिनों के पहले एक बड़े भारी जंगल के पास बुधुआ और दुखनी नामक एक गरीब दम्पति (पति पत्नि) रहता था। कोई संतान न होने के कारण, वे दोनों सोमन नाम के एक बच्चे को लाकर पालने लगे। लड़का बारह साल का हुआ।

वे दोनों पति पत्नि काफ़ी उम्र वाले थे, और आलसी भी। इस लिए उन लोगों ने धीरे-धीरे खेत और घर का काम, सब कुछ उस छोटे बच्चे पर डाल दिया।

एक दिन दुखनी ने जो काम कहा, उस को पूरा करके, वह लड़का जरा दीवार से सट कर बैठ गया। इतने में कहाँ से आया बुधुआ, धक-धक जलता हुआ—

'क्या रे! तू यों ही आराम करता बैठा रहेगा! कौन-सा पहाड़ ढा लाया है जो इस तरह सुस्ताने बैठ गया है! सब काम तो ज्यों का त्यों पड़ा हुआ है। न तूने लकड़ियाँ फाड़ी हैं, न खेत का काम किया है, उठ-उठ। तुझे बिठा कर खिलाने के लिए हमारे पास इतने पैसे नहीं हैं....' कह कर वह गरज उठा।

सोमन पहले से ही थका माँदा था, यह बात सुनते ही; उस के हृदय की आग और धधक उठी। वह मन-ही-मन पीड़ा से घबरा कर भगवान को पुकारने लगा—'हे भगवान! कैसी यातना दी है मुझे! इतना काम और पेट भर कर खाना भी नहीं!'

इस प्रकार बिलखते हुए सोमन चूल्हे पर बर्तन रख कर बैठ गया। उसके मन में एक ख्याल आया—'इस यातना से छुटने का एक ही उपाय है कि यहाँ से जंगल में भाग जाना।'

भजन लाल शर्मा

इस ख्याल में डूबे और बैठे हुए सोमन की पीठ पर अकस्मात आकर एक गरम-गरम लकड़ी लगी।

'बर्तन में उफान आ रहा है और तू बैठा देखता है! क्या ध्यान लगा रहा है! खूब खा लेना पेट भरके....' ऐसा कह कर दुखनी उसे पीटने लगी।

अब यह गाली-मार सोमन सह न सका। उठा और ऐसा उछला कि एक ही छलाँग में घर से बाहर हो गया और जंगल की ओर भाग चला। फौरन दुखनी अपने पति को पुकारने लग गई। धड़-फड़ा कर बुधुआ आया और सोमन को भागते हुए देख कर जोर से चिल्लाने लगा—

'अरे नादान सोमन! जंगल की ओर भागा जाता है! वहाँ तू एक क्षण भी जिन्दा रह सकेगा? जंगल के चारों ओर एक बड़ी ऊँची दीवार खड़ी है उस को तू लाँघ नहीं सकेगा। अरे तू जानता नहीं जंगल में कैसे खूँखार जानवर और भूत-प्रेत रहते हैं!' यों वह जोर-जोर से चिल्लाता रहा।

'कुछ भी हो! इतना सब कुछ कहने पर भी जिस को अपनी जिन्दगी से ही नफ़रत हो गई थी वह लड़का इन बातों पर

क्या ध्यान देता?' 'इन क्रूर मानवों से तो वह पिशाच ही अच्छे हैं' इस प्रकार उसने दृढ़ निश्चय कर लिया! तेज़ी से नाक की सीध में दौड़ा चला गया।

कुछ दूर दौड़ने के बाद बुधुआ के कहे अनुसार एक बड़ी भारी दीवार जङ्गल को घेरे सोमन को दिखाई पड़ी। लेकिन सोमन को देखते ही वह दीवार एक जगह से फट गई और जाने की राह निकल आई।

'यह कैसा आश्चर्य? जरा देखूँ तो सही!' यह सोच कर वह उस दीवार में घुसा और जङ्गल में दाखिल हो गया। वहाँ उसे बड़े-बड़े दरख्त, विचित्र पौधे, लताएँ—

जिनके कारण दिन में ही सर्वतत्र घने बादलों से घिरे घोरांधकार-सा फैला हुआ था।

धीरे-धीरे सोमन जङ्गल में कदम रखने और मन ही-मन सोचने लगा—' यह अंधकार और यह छाया, मेरा क्या कर सकते हैं! यहाँ के खूँखार जानवर भी मेरा क्या बिगाड़ सकते हैं! तो मुझे क्या करना चाहिए....!'

'तुमको अभी यह करना चाहिए....!' इस प्रकार की एक आवाज तुरत सोमन के कानों में पड़ी। 'तुमको मेरी देह पर से उतर कर ज़रा दूर हट जाना चाहिए—समझे!' उस ध्वनि ने फिर कहा।

जड़वत् होकर उसने पीछे मुड़ कर देखा। वह एक बहुत बड़ा पेड़ था। 'किसने यह आवाज दी, क्या तू ने?' इस प्रकार आश्चर्य से सोमन ने पूछा।

'अरे, हाँ रे छोकरे! मैंने ही यह आवाज दी है। पहले मेरे शरीर पर से उतर कर दूर तो हट जा! अब मैं अधिक देर तक तेरा भार सहन नहीं कर सकता!' उस विचित्र वृक्ष ने कहा।

उसकी यह बात सुन कर लड़के को कुछ ढाड़स हुआ और उसने निर्भय होकर उस पेड़ से पूछा—'आखिर तू पेड़ ही तो है न! और मेरे साथ दया-भाव से ही तो बात कर रहा है! तो फिर सुन! मुझे अभी बड़ी तेज भूख लग रही है। क्या यहाँ कहीं कुछ खाने को मिल सकेगा?'

'इस की क्या चिंता! क्या चाहिए, मुझे बोल!' उस महा वृक्ष ने कहा। यह सुन कर सोमन को बड़ी खुशी हुई। उसने कहा—'देखने में तो तू कल्प-वृक्ष ही मालूम होता है। इस जङ्गल से मुझे कितना डर लगता था; लेकिन तुम्हारी बातें सुनते ही मुझ में निर्भयता आ गई।'

यह सुन कर वह वृक्ष उपेक्षा के भाव से हँसा—'अरे, नादान छोकरे! तूने तो इसे एक मजे का खेल ही समझ लिया है, और खूब दावत उड़ाने की सोच रहा है! तो फिर याद रख; इसी प्रकार अभी कोई आ जाएगा और तेरा भी भोग लगा लेगा!'

वृक्ष के ऐसा बोलते ही सोमन के हाथ-पाँव फूल गए—'तो क्या कल्प-वृक्ष, तू ही मुझे घुटक जाएगा!' ऐसा कह कर उसने रोनी सूरत बना ली।

'मैं तुमको नहीं घुटकूँगा। आदमी का माँस मुझे भाता ही नहीं!' पेड़ ने कुछ देर रुक कर फिर कहा।

'लेकिन वह लम्बी नाक वाला तो आदमी के माँस पर फिदा रहता है। अभी वह यहाँ आएगा। इसलिए उसका आहार होने के पहले तू कुछ अपना आहार तो पूरा कर ले!' उस वृक्ष ने कहा।

यह बात सुनते ही सोमन खाने जाते फलाहार को छोड़ कर पूछने लगा—

'अच्छा! तो क्या वह लम्बी नाक वाला अभी यहाँ आ जाएगा, और आकर मुझे खा जायगा? अरे! तो मैं कहीं जाकर छिप जाऊँगा!' कहते हुए सोमन तुरत वहाँ से चल पड़ा। सोमन कुछ दूर ही दौड़ा था कि सारा प्रदेश इतना गरम हो उठा कि सहन के बाहर हो गया।

'ऐसे गाढ़े अन्धकार में कहाँ से आ रही है यह गरमी?' ऐसा सोच कर उसने अपने चारों ओर गौर से देखा। इतने में उसे वह पेड़ हिलता सा मालूम हुआ और एक भयङ्कर आवाज सुनाई पड़ने लगी!

'ऐसा लगता है जैसे तुझे लम्बी नाक वाले की बात मालूम नहीं हो! उस भयङ्कर जानवर को जब भूख लगती है, तब अपने चारों ओर कुछ योजन तक वह ज्वाला फैला देता है। उसकी गरमी से

जमीन सब जल जाती है। यह देखो!' सोमन ने उस ओर देखा। एक भयङ्कर जानवर अंगारे उगलता हुआ उसी की ओर दौड़ा आ रहा था। सोमन के पैर दौड़ने लगे। लेकिन वह भयङ्कर जानवर चिल्ला कर बोला—

'अरे छोकरे, दौड़ने से कुछ लाभ नहीं। साधारण समय होता तो दौड़ने में मैं तुझसे होड़ लगा लेता। लेकिन अभी तो मुझे कड़ाके की भूख लग रही है। आखिर तू किसी तरह बच तो सकता नहीं। खैर! दो-चार कदम इधर-उधर डाल ले, दोनों की थकावट दूर हो जाएगी!' यह बात सुन कर सोमन समझ गया कि दौड़ने से अब कुछ भी लाभ नहीं। इसलिए उसने सोचा—'अभी तो मौत के मुँह में जाना ही है! क्यों न आँखें मूँद कर यहीं खड़ा रह जाऊँ!' इतने में लम्बी नाक वाला उसके पास पहुँच गया। डर के मारे काँपता हुआ सोमन उसके सामने खड़ा था। इतने में उसे एक बड़ी भयङ्कर छींक आई।

'ओफ़! कैसी थी यह भयङ्कर छींक! प्राण ही निकल गए!! जब कि मैं एक बढ़िया भोजन करने जा रहा था कि न मालूम कहाँ से आ गई यह छींक! अगर यह भयङ्कर सर्दी कोई दूर कर दे तो मैं उसकी मुराद पूरी कर दूँगा।' उसने कहा।

लम्बी नाक वाले के ऐसा कहते ही सोमन के दिल में कुछ ढाढ़स बँध गया।

उसने कहा—'अगर तू अपनी बात पर पक्का रहे तो मैं एक क्षण में तुम्हारा जुकाम दूर कर दूँगा!' 'मैं अपनी बात से कभी नहीं टलूँगा! मेरी बात को तो तू विधान का वज्र-लेख समझ ले!' लम्बी नाक वाले ने वचन दिया। 'तो फिर इस प्रदेश को छोड़ कर बाहर आ जा। हमारे देश में सूर्य-रश्मि काफ़ी है! छींक के लिए वह राम-बाण दवा है!' सोमन ने कहा।

'अरे सूर्य क्या है? और सूर्य-रश्मि किसे कहते हैं?' अचरज में पड़कर लम्बी नाक वालों ने सोमन से अनेक प्रश्न किए।

तब सोमन ने उसे सूर्य किरणों के गुण बताए और सूर्य-चिकित्सा का लाभ समझाया।

लम्बी नाक वाले की खुशी का ठिकाना न रहा। सोमन आगे चला और उसके पीछे पीछे चलने लगा वह लम्बी नाक वाला। कुछ दूर जाने पर फिर वह दीवार दीख पड़ी। लम्बी नाक वाले ने उस पर अंगारे छोड़े।

दीवार फटी और एक अच्छी राह बन गई। सोमन लम्बी नाक वाले को लेकर सीधे बुढ़ुआ के घर की ओर चला। दूर से ही उस भयंकर जन्तु के साथ सोमन को आते देख, दोनों पति-पत्नी थर-थर काँप उठे।

'माफ कर सोमा हम लोगों ने तुझे बहुत सताया। अब हम पछता रहे हैं!' ऐसा कर वे दोनों उस की शरण में आ गए।

तब सोमन बोला—'ऐसा मत सोचो: तुम लोगों ने जो मुझे सताया उसी के कारण मुझ में साहस आया, और मैं समझ गया कि अगर हम किसी की भलाई चाहें तो वह भी हमारी भलाई ही चाहेगा।'

'उस घोर जंगल में एक विचित्र पेड़ था, जिसने मेरा आदर किया और मुझे भोजन दिया। पिशाच जाति में गिना जाने वाला और आदमी का माँस खाने वाला यह खूँखार जानवर मेरे ऊपर विश्वास कर, मेरे पीछे-पीछे यहाँ तक आया है। यह सब आप की बदौलत ही। इस लिए मैं आप दोनों का अत्यंत ऋणी हूँ' उसने कहा।

—लम्बी नाक वाले को सोमन अपने साथ घुमाता-फिराता रहा। बहुत आदर सत्कार से उसे रखा और सूर्य किरणों की चिकित्सा से उस के जुकाम को सदा के लिए दूर कर दिया।

अन्धा और बालक

[कुँवर उदय प्रताप सिंह बेन 'उदय'

रात थी काली भयानक वह बड़ी,
और 'टिक्' 'टिक्' कर रही दस पर घड़ी।
तदपि था वह राज-पथ जन-गण-भरा,
चल रहा था ले प्रभु का आसरा।
एक अन्धा वृद्ध कर में ले घड़ा,
डगमगाता चल रहा था पग बढ़ा।
कर में बदले लाठी के इक दीप था,
सोचो तुम—क्या ऐसा करना ठीक था!
एक बालक जो चपल था होशियार,
बाजार से कुछ आ रहा था ले उधार।
वाचाल था, बातून, वह बेहद बड़ा,
देख अन्धे को हुआ तत्क्षण खड़ा।
यह हँसी की बात थी उसके लिए,
ऐसा पागल पुरुष भी क्यों कर जिए।
जो न समझे दीप का क्या अर्थ है,
हाथ में अन्धे के दीपक व्यर्थ है!
पर निवारण हेतु कौतूहल बढ़ा,
औ हुआ जा सामने उसके खड़ा।
बोला क्या मैं पूछ सकता स्थविर!
क्या न अनुभव हो रहा तुमको तिमिर!'

'क्या प्रयोजन उस तुम्हारे दीप से!
जिस को लेकर भी चलो भय-भीत से।
बात थी स्पष्ट पर तीखी कही;
तीर सी जा वृद्ध के वह चुभ गयी।
बोला अन्धा बाल से-हे भद्रमुख!
मानना तुम बात का मेरी न दुख।'
'पर कहूँगा मैं न तुम में है अकल,
तुम समझ पाये न जो बिल्कुल सरल।'
'देखते हो तुम नहीं मम हाथ में,—
कुम्भ है—भारी अंधेरा साथ में।'
'गर न हो दीपक कोई टकरायगा,
और मेरा कुम्भ यह ढह जाएगा।'
'इस प्रयोजन साथ दीपक ले लिया,
पर न तुमने ध्यान कुछ इस पर दिया।
इस लिये दीपक न यह मेरे लिये,
अपितु है आप जैसों के लिये।'
'जो उड़ाते हैं सभी का यों मज़ाक,
जम नहीं पाती मगर ऐसों की धाक।'
बात सुन लड़का हुआ लज्जित बड़ा,
खिन्न हो घर की तरफ वह चल पड़ा।

पंचायुध

प्राचीन काल में जब ब्रह्मदत्त काशी-राज्य पर शासन कर रहा था, तब भगवान बोधिसत्व एक राजा के रूप में पैदा हुए। नाम-कर्ण के शुभ-मुहूर्त पर देश-देशांतर से भविष्य-वाणी करने वाले लोग आए और बोले—'इस लड़के की जन्म-कुंडली अत्यंत अद्‌भुत है। पाँच शस्त्रों से यह समस्त संसार को विजय करने वाला महा पराक्रमशाली राजा होगा।' ऐसी भविष्य-वाणी कर उन्होने उसका नाम 'पंचायुध' रखा।

बच्चे ने होश सम्भाला, तब गन्धर्व देश के तक्षशिला नामक नगर में वह एक महा पण्डित के पास विद्याभ्यास के लिए भेज दिया गया।

पंचायुध तक्षशिला जाकर समस्त विद्याओं में पारंगत हो गया। आश्रम से विदा लेकर जब वह गुरु के पास पहुँचा तो गुरु-देव ने उसे आशीर्वाद दे कर पाँच अस्त्र भी दिए। फिर गुरु की आज्ञा लेकर वह काशी राज्य की ओर चल पड़ा। रास्ते में आते-आते उसे एक भयंकर जङ्गल को पार करना पड़ा। वह जब जङ्गल से हो कर मस्त चला जा रहा था, तो कुछ लोग उससे कहने लगे—'अरे छोकरे—तुमको मालूम है या नहीं, इस घोरारण्य में रोमांचक नामक एक राक्षस विहार करता है। अगर उसकी आँखों में पड़े, तो बस—तुम्हारा काम तमाम हो जाएगा। इसलिए तुम यह रास्ता छोड़ कर दूसरे रास्ते से जङ्गल पार करो और अपनी जान बचा लो।'

लेकिन उनकी ये बातें महा पराक्रमी पंचायुध के कानों में पड़ी ही नहीं। मस्ती से झूमता हुआ वह नाक की सीध में चलता गया और ठीक जङ्गल के बीच में जा पहुँचा। कुछ दूर जाने पर ताड़ के पेड़

गुरचरण लाल

के बराबर वह रोमांचक राक्षस उसके सामने आ खड़ा हुआ। उसका भयंकर सिर था। लोटे की तरह आँखें थीं। हाथी की तरह मुँह के भीतर से दो दाँत निकले हुए थे। सारे शरीर में भालू की तरह लम्बे-लम्बे बाल भरे हुए थे—अनेक तरह की भाव-भंगिमाओं से वह भय की वर्षा कर रहा था!!

'कौन है रे तू? जा कहाँ रहा है? ठहर जा अभी निगलूँ तुझे!' यों गरज कर उस राक्षस ने पंचायुध की ओर देखा।

राक्षस की बात सुन कर पंचायुध ने कहा—'ओ राक्षस राजा! यह सब जान-बूझ कर ही मैं इस जङ्गल में आ घुसा हूँ। तू मेरी राह मत रोक। देख! इस अस्त्र से तुझे मैं खड़े खड़े गिरा डालता हूँ खड़ा रह ले....' कह कर उसने अपने धनुष पर बाण चढ़ाया और कानों तक खींच कर उसके ऊपर छोड़ दिया। वह बाण जाकर राक्षस के वक्ष-कवच में लगा, लेकिन उससे राक्षस को कुछ भी नहीं हुआ। गुस्से में आकर पंचायुध ने उस पर एक और बाण छोड़ा। वह भी पहले की तरह जाकर उसके वक्ष-कवच में घुस गया। फिर प्रचण्ड वेग से उसने उसके ऊपर बाणों की वर्षा कर दी; लेकिन लाभ कुछ भी न हुआ।

अंत में रोमांचक ने अपने वक्ष-कवच को जोर से हिलाया और पंचायुध के सारे बाण सूखे पत्ते की तरह झड़ गए।

अब भगवान बोधिसत्व ने अपनी तलवार लेकर राक्षस के ऊपर वार किया।

वह बड़ी तलवार भी बाणों की तरह ही राक्षस के वक्ष-कवच में जाकर चुभ गई। इसके बाद राजकुमार ने गदा से आघात किया; वह भी जाकर उसके वक्ष से सट गया। इस तरह और भी अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग किया, लेकिन सब का फल ऐसा ही निकला।

यह देख कर बोधिसत्व ने कहा—'ऐ—मैं कौन हूँ कदाचित नहीं जानता है? मेरा नाम पंचायुध है। जब मैं इस जङ्गल में आया था, तो मैं अपने हथियारों पर भरोसा करके नहीं आया था। मैं तो अपनी ताकत पर भरोसा रख कर ही आया हूँ। तो अब देख ले मेरा बल। मेरे आघात से अब तू ढेर हो जाएगा!' कह कर पंचायुध ने अपने हाथों में समस्त ताकत बटोर कर एक घूँसा राक्षस को मारा। बस उसका वह दाहना हाथ जाकर राक्षस के रोएँ में सट गया!!

फिर भी राजकुमार रुका नहीं; बाएँ हाथ और पैरों से उसे तड़ा-तड़ मारता गया। बस, वह हाथ और पैर भी राक्षस के रोएँ में जकड़ गए। फिर भी उसका पौरुष नहीं मरा—'तो देख ले, रे दुष्ट' इस प्रकार गर्जन करता हुआ वह अपने सिर से ठोकर देने लगा। अरे, बेचारे का सिर भी राक्षस के रोएँ में जकड़ गया!!

इतना होने पर भी बोधिसत्व का साहस नहीं छूटा। उस लड़के को देख कर रोमांचक ने सोचा—'यह तो कोई साधारण आदमी नहीं जान पड़ता है! यह तो केसरी कुमार मालूम होता है। जब यह मेरे मुकाबिले में ही खड़ा हो गया, तब तो इसके धैर्य और साहस की तारीफ़ किए बिना नहीं रहा जाता। अपनी इतनी जिन्दगी में मैंने ऐसे साहसी आदमी को कभी नहीं देखा था!'

'छोकरे!—तुम्हारी तरह का कोई भी आदमी मुझे देख कर ही काँप जाता, लेकिन तुम में तो डर का लेश भी नहीं दीख पड़ता है। इसका क्या कारण है?'

इसके बदले बोधिसत्व ने कहा—

'कोई डरे क्यों? जभी वह जनमता है मौत भी उसके साथ लग जाती है। इसके सिवा—मेरे शरीर के भीतर वज्र के समान

एक तलवार है उसका नाम है ज्ञान। अगर तू मुझे निगल भी जाएगा तब भी वह तेरे पेट में जाकर तेरा नाश कर देगी।'

यह बात सुनते ही रोमांचक ने फिर अपने मन में सोचा—'यह छोकरा जो कुछ कह रहा है, उस में तो गूढ़ तत्व भरा है। ऐसे शूर-शिरोमणि को पेट में डाल लेने से क्या होता है! इसे छोड़ देना ही अच्छा!'

उसके बाद राजकुमार से उसने कहा—'छोकरे, मैं तुम्हें निगलना नहीं चाहता हूँ। तुम खुशी से अपनी राह चले जाओ।'

'अरे राक्षस! मुझे छोड़ कर तुमने अच्छा ही किया। मैं तो जाऊँगा ही; लेकिन तू कुछ अपनी बात तो कह। कितने जन्मों तक इस प्रकार दुष्कर्म करता हुआ यह निकृष्ट जीवन तू बिताता रहना चाहता है! क्यों अज्ञान रूपी अंधकार में तू अपना सिर मार रहा है!'

लेकिन—तू अब इस तरह नहीं रह सकेगा। बेगुनाह आदमियों को तू मार-मार कर खाता है। इससे तेरे पाप सौ गुणा बढ़ते जा रहे हैं। इसलिए अगर तू उत्तम मानव जन्म पाना चाहता है, तो पाप करना छोड़ दे!' इस प्रकार का उपदेश पंचायुध ने राक्षस को दिया।

इतना ही नहीं, मनुष्य को होश में लाकर उसके उद्धार के लिए जो पाँच महा वाक्य कहे गए हैं, उनके बारे में और मानव को पतित बनाने के लिए जो पाँच-तन्त्र रचे गये हैं, उनके बारे में भी खोल-खोल कर बोधिसत्व ने राक्षस को समझाया-बुझाया।

उस दिन से राक्षस अपनी राक्षसी वृत्तियों को भूल गया। परोपकार के बड़े-बड़े काम करके उसने बहुत बड़ा नाम कमाया। अब उस जङ्गल में जाने से किसी को कोई डर नहीं होता।
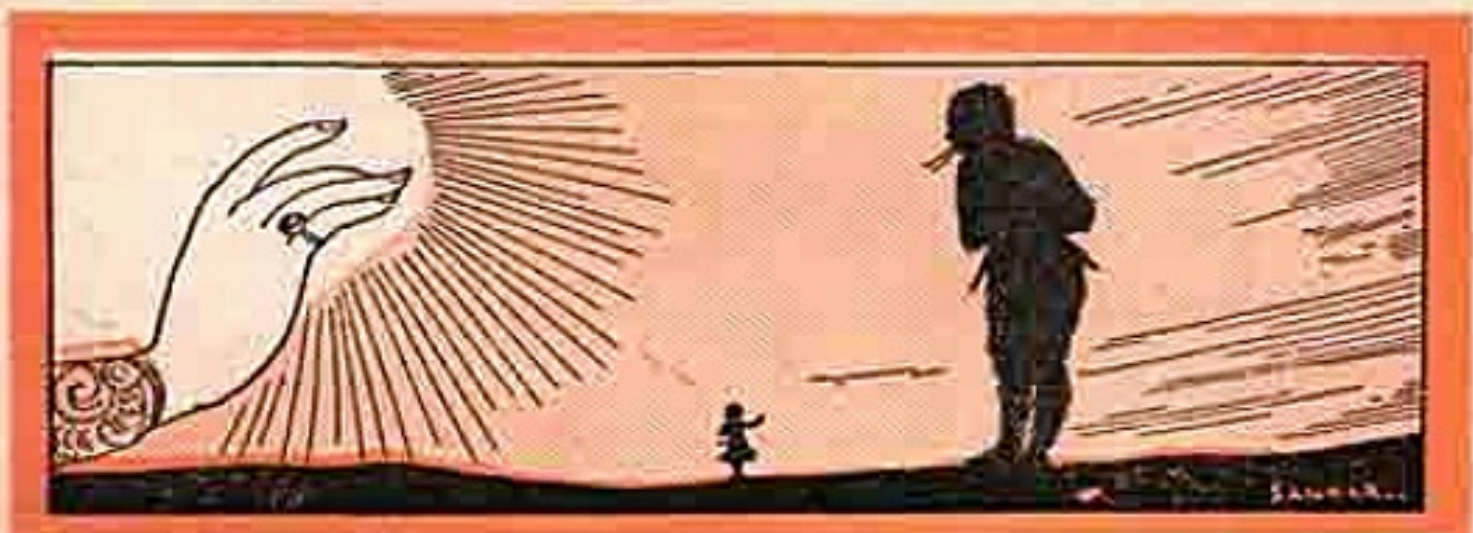
पुराने जमाने की बात है। केरल देश में एक ब्राह्मण रहता था। वह भारी दरिद्र था। उसका नाम-धाम भी कोई नहीं जानता था। लेकिन वह परम भक्त था। अपने इष्ट-देव विष्णु भगवान की आज्ञा से उसने एक ग्रन्थ रचा। भावावेश में रचे हुए उस ग्रन्थ को ले जाकर उसने बड़े-बड़े पंडितों और विद्वानों को दिखाया और उनसे सम्मति माँगी।

उस को देख कर प्रत्येक आदमी ने कहा—'यह क्या लिखावट है, भाई! क्या यह देव-भाषा है?' इस प्रकार लोग उसकी मखौल उड़ाने लगे। ये बातें सुन कर ब्राह्मण को भारी विरक्ति हो गई। वह ग्रन्थ को बगल में दबा कर तीर्थ यात्रा को निकल गया।

कुछ दिनों के बाद वह ब्राह्मण एक भारी जङ्गल में पहुँचा। जङ्गल की भयङ्करता देख कर उसे एक कदम भी बढ़ाना मुश्किल हो गया। इस के सिवा वह थका माँदा भी था। इसलिए एक पेड़ की छाया में चादर बिछा कर लेट गया।

आधी रात के समय वहाँ एक संन्यासी उसे दीख पड़ा। उसने ब्राह्मण से कुशल-प्रश्न पूछे। ब्राह्मण ने उसे अपनी राम-कहानी कह सुनाई और अपना लिखा ग्रन्थ भी उसे दिखाया।

संन्यासी को उस पर दया आ गई। उसने कहा—"ब्राह्मण देवता, शिवरात्रि के दिन यात्रा करके तुम गोकर्ण-क्षेत्र पहुँचो। वहाँ पूरब दिशा वाले गोपुरम के पास बैठ कर प्रतीक्षा करो; वहाँ क्या-क्या होता है, देखो! लेकिन उस की खबर एक चिड़िया को भी न लगे। इस की सावधानी रखना!' यह कह कर वह संन्यासी अदृश्य हो गया।

रामप्रसाद

उस के आदेशानुसार वह गोकर्ण-क्षेत्र पहुँचा। पूरब दिशा वाले गोपुरम के पास बैठा हुआ जब वह गौर से देख रहा था तो सूर्यास्त होने के समय एक बूढ़ा ब्राह्मण अपने साथ चार कुत्तों को लेकर उसके पास आकर खड़ा हो गया। उस बूढ़े ब्राह्मण को देखते ही उसके मन में एक ज्योति सी चमक उठी कि इसी ब्राह्मण से मेरा उद्धार होगा। तुरत उठ कर वह उस के पैरों पर पड़ गया और अपना ग्रन्थ उस के हाथों में सौंप दिया।

बूढ़ा ब्राह्मण मुस्कुराता हुआ कहने लगा— 'तुमने इतने कष्ट उठा कर जो यह ग्रन्थ लिखा है—दुनियाँ में इसकी बड़ी प्रसिद्धि होगी; चिन्ता मत करो! लेकिन तुमने मुझे ही क्यों पकड़ा है?' इस पर वह ब्राह्मण बोला—'महाराज! मैं वचन दे चुका हूँ कि वह रहस्य मैं किसी को नहीं बताऊँगा; इसके लिए आप मुझे क्षमा कीजिए....!'

बूढ़ा ब्राह्मण संतुष्ट होकर कहने लगा— 'अच्छा जाने दो! वह सब बातें मुझे मालूम हैं। तुमको जिसने सलाह दी थी, वह एक गंधर्व है। इस प्रकार देवताओं का रहस्य खोलने के कारण उसके ऊपर शाप पड़ गया है। उस शाप के कारण वह इस भू-लोक में पैदा हुआ और लोकोपकार के लिए तुम्हारे ग्रन्थ को वही अमरत्वप्रदान करेगा!' ऐसा कह कर वह ब्राह्मण अंतर्धान हो गया। वह बूढ़ा ब्राह्मण ही महर्षि वेदव्यास थे और उनके साथ जो चार कुत्ते थे, वेही चारों वेद थे।

वेदव्यास के इस प्रकार कहने के कुछ दिन के बाद उस ब्राह्मण का देहावसान हो गया। उसके हाथ में जो ग्रन्थ था, वह नदी की धारा में बह कर चम्पककेसरी राजा के पास पहुँचा। उस राजा ने उस ग्रन्थ को उलट-पलट कर देखा। लेकिन उसकी समझ में कुछ नहीं आया। तब उसने

उसे अपने दरबार के महा पंडित को देकर कहा—'आज से इकतालीस दिन के भीतर इस ग्रन्थ की बातों का विवरण मुझे मालूम हो जाना चाहिए। नहीं तो मैं तुम्हारा सिर उड़ा दूँगा।' राजा की यह आज्ञा सुन कर दरबार का वह महा पंडित चक्कर में पड़ गया।

उसी समय पंडित का एक प्यारा शिष्य रामानुज अपने गुरु के पास आया और गुरु की चिंता का कारण जानना चाहा। लेकिन गुरु ने उसे कुछ नहीं बताया। राजा ने जो इकतालीस दिन की अवधि दी थी—उसमें अब एक ही रोज बाकी रह गया था!

गुरु से यह कहे बिना रहा न गया। गुरु की बात सुन कर रामानुज ने कहा—'गुरुदेव! आप कोई चिंता न कीजिए!' शिष्य की इच्छानुसार गुरुजी ने उस रात को पूजा-पाठ की व्यवस्था कर दी।

आधी रात का समय—

पूजा बहुत धूम-धाम से चल रही थी। आतुरता के मारे गुरुजी ऊपर चढ़ कर देखने लग गए। रामानुज की पूजा के फल-स्वरूप छः दिव्य पुरुष प्रगट हुए और पूजा-मन्दिर में बैठ कर उस महा-ग्रन्थ की रचना करने लगे।

यह दृश्य देख कर गुरुदेव ऐसे घबराए कि अस्त-व्यस्त होकर ऊपर से गिर पड़े! उनकी यह अवस्था देख कर उनके शिष्य रामानुज ने कहा—'अरे रे, यह कैसा काम आप ने किया!' फिर उनकी सेवा से सुश्रूषा की और उनको चङ्गा बना दिया।

राजा ने जो अवधि दी थी, उसके बीतने के पहले ही वह ग्रन्थ सुन्दर लिपि में तैयार हो गया। तब राजा ने उस महा पंडित का बहुत बड़ा सम्मान किया। यही मलयाल देश का परम प्रसिद्ध ग्रन्थ है, जिस का नाम है 'अध्यात्म रामायणम' और रामानुज ही वह शाप-ग्रस्त गंधर्व था जिस ने उस ब्राह्मण को गोकर्ण क्षेत्र जाने की सलाह दी थी।

रंगीन चित्र कथा : चित्र-पहला

अनेकों हजार बरस के पहले जापान देश में तोजो नामक एक धनवान रहता था। वह कोटीश्वर था। उसके हिटसू नामक एक लड़की थी। वह अपूर्व सुन्दरी थी। साथ ही वह बहुत बड़ी भक्तिन भी थी।

तोजो ने अपनी बेटी को एक महा चक्रवर्ती राजा की रानी बनाने का निश्चय किया। हिटसू यौवनवती हुई। उसके गाँव की सभी सखी-सहेलियों की शादी हो गई; तो उसके मन में भी शादी की चिंता समाई।

जैसा उसने सोचा था, एक दिन तोजो के भवन में धूम-धाम से चीन देश का सम्राट आ गया। हिटसू के बाप ने हिटसू को बुला भेजा। शरमाती हुई हिटसू सम्राट के सामने जा खड़ी हुई।

तोजो ने अपनी बेटी से सम्राट के ऐश्वर्य, उसका भोग-भाग्य, उसके शील स्वभाव का विशाल-वर्णन करके कहा—'सम्राट, तुम्हें अपनी रानी बनाना चाहते हैं' यह सुन कर हिटसू ने कहा—'मैं अपनी देवी को जो बड़ी भेंट चढ़ाना चाहती हूँ, क्या वह भेंट उस राज्य में मिलेगी?' उसने यह प्रश्न अपने बाप से किया। तोजो ने जवाब दिया—'वहाँ अनुपम अद्भुत और अपूर्व वस्तुओं का भंडार है!'

शादी केलिए बड़ी धूम-धाम से व्यवस्था की गई। आखिर में हिटसू ने अपने इष्टदेव के मन्दिर में जाकर मनौती मानी—'मैं चीन देश की रानी होते ही तुम्हें अपूर्व भेंट चढ़ाऊँगी' उसने देवी के सामने संकल्प किया।

उसके बाद शादी हुई। सम्राट अपनी रानी के साथ अपने देश को चला गया। वहां ले जाकर उसने अपनी रानी को अपने अद्भुत-वैभव तथा नंदनवन के समान बाग-बगीचे वाले किले में सैर-सपाटा कराया।

उसके उस नंदनवन में बारहों मास पौधे फूलों से लदे रहते थे। पक्षियों के मधुर गान से वह गुंजित रहता था। सचमुच वैसा उद्यान दूसरा और कहीं नहीं मिल सकता था। यह सब दिखाते-सुनाते सम्राट ने अपनी रानी हिटसू को तन्मय बना दिया! — लेकिन —

भगवान के साथ - - - -
- - - - शतरंज की बाजी

पुराने जमाने में किसी समय एक संन्यासी रहता था। वह बड़ा नामी-ग्रामी विद्वान था। उसकी शिष्य-मण्डली सारे देश में फैली हुई थी।

वह संन्यासी साल में सिर्फ छः महीने अपने आश्रम में रहता और अपने शिष्यों को बड़े मनोयोग से वेद-वेदान्त और शास्त्र आदि पढ़ाया करता था। बाकी छः महीने देश-भ्रमण करता था। इस प्रकार वह संन्यासी जब देश भ्रमण कर रहा था तो घूमता-घामता वह देहात में रहने वाले एक शिष्य के यहाँ पहुँचा। संन्यासी जब कुछ दूर पर ही था कि यह समाचार शिष्यों के बीच फैला। शिष्य वृन्द सब जमा हुए और मङ्गल-आरती तथा गाजे-बाजे के साथ संन्यासी का स्वागत करके अपने गाँव में ले गए।

उस संन्यासी ने जैसे ही गाँव में कदम रखा, वैसे ही वहाँ ऐसी भीड़ होने लगी, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। ब्रह्म-भोज, भजन-पूजन, कथा-पुराण के कारण ग्राम-वासी इतने खुश थे कि वे अपने को परम कृतार्थ समझने लग गए।

उस ग्राम में रहने वाले लोगों का उद्धार करके, संन्यासी अब एक दूसरे गाँव में जाने का प्रयत्न करने लगा। जब रवाना होने में सिर्फ एक घण्टा बाकी रह गया; तब वह संन्यासी अपने डेरे में कुछ सोचता हुआ इधर-उधर चहल-कदमी करने लगा। यों चहल-कदमी करते हुए संन्यासी के

सोमनाथ लेहरी

सामने जङ्गल में एक आदमी की विचित्र चेष्टाएँ उसे अचरज में डालने लगीं।

'यह कौन है, भाई! कहीं यह पागल तो नहीं है!' संन्यासी ने मन में सोचा।

यह आश्चर्य क्या है! इसका पता लगाने का निश्चय करके वह संन्यासी उसके पास पहुँचा। 'यह संन्यासी क्यों इस तरह आया है!' यों विचार करता वह अपने आप बोलने और हाथ-पैर अजीब ढङ्ग से हिलाने लग गया।

'अरे भाई! क्या है यह सब! तुम किस से बातें कर रहे हो!' संन्यासी ने पूछा।

'बातें नहीं कर रहा हूँ; खेल रहा हूँ! मैं जिसके साथ खेल रहा हूँ—शायद वह तुम्हें नहीं दीख रहा है!' इस प्रकार उस आदमी ने जवाब दिया।

संन्यासी अचरज में पड़ गया—'क्या यह पागल है!' उसके मन में फिर यह आशङ्का उठ खड़ी हुई।

'अरे भाई! तुम कौन हो और तुम्हारा खेल क्या है! तुम्हारे साथ खेलने वाला वह दूसरा गुप्त पुरुष कौन है! क्या तुम बता सकते हो मुझे!'

'यही तो सब से बड़ा रहस्य है। महानुभाव, आप तो लोक-कल्याण के लिए अवतरित हुए हैं। इसलिए आप से कहने में कोई हर्ज नहीं! मैं जो खेल खेलता हूँ, उसका नाम है शतरंज; और मेरे साथ जो खेलता है वह है भगवान!' निष्कम्प होकर उस विचित्र मनुष्य ने कहा।

संन्यासी का हँसी के मारे पेट फटने लगा। उसने सोचा—'अरे क्या! सचमुच यह पागल ही है! लेकिन इस पागलपन में भी एक ज्ञान और प्रणालिका दीख रही है!'

फिर संन्यासी ने पूछा—'तो इस खेल में जीतता कौन है!'

'ठहरिए! ठहरिए!! अभी तक खेल पूरा नहीं हुआ है!' इस प्रकार कह कर पेड़ की ओर देखते कहने लगा—'आप ने जिस खेल की बात कही, वह मैंने सुन ली है। भगवान, आज की बाजी आप की है।

यह हरकत संन्यासी के लिए और भी अचरज पैदा करने वाली हुई। फिर उसने प्रश्न किया—'तो क्या बाजी जीतने वाले को हारने वाला कुछ देता नहीं?'

'देता क्यों नहीं, स्वामी जी! प्रत्येक खेल में दो मुहरों की बाजी लगाई जाती है' उस विचित्र आदमी ने जवाब दिया।

'तो अभी तो तुम हार गए हो। फिर तुम ने भगवान को दो मुहरें क्यों नहीं दीं?' संन्यासी ने विनोद से पूछा।

पूछते ही उस आदमी ने अपनी जेबसे दो मुहरें निकाल लीं—'भगवान अपनी जीती बाजी की रकम खुद नहीं लेते हैं। लेने के लिए किसी महात्मा का रूप धारण कर मेरे सामने प्रत्यक्ष होते हैं। उन के हाथ में डाल देने से वह धन भगवान के पास पहुँच जाता है। सौभाग्य से आज आप पधारे हैं!' कह कर चमचमाती हुई दो मुहरें उसने संन्यासी के हाथ में रख दीं।
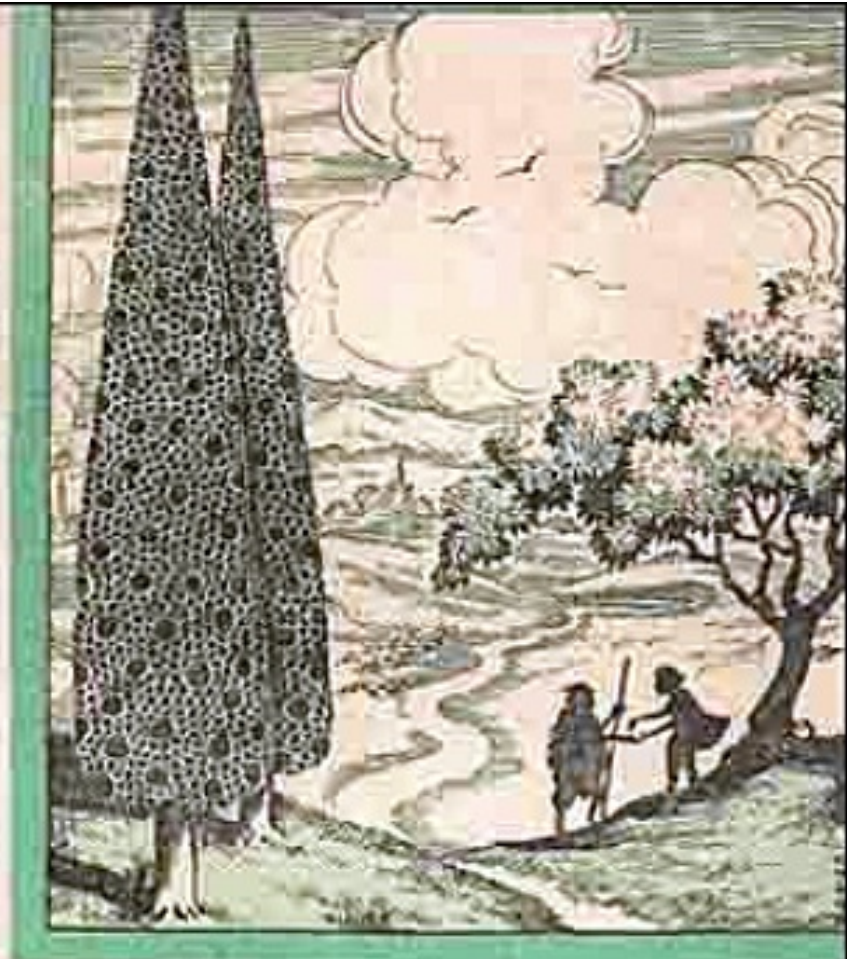
अब संन्यासी क्या करे! उसे कुछ नहीं सूझ पड़ा। फौरन अपने डेरे पर जाकर अपने शिष्य-गणों से बताया कि 'पागलों में भी ऐसे ऊँचे दर्जे के भक्त होते हैं!'

दो महीने बाद—

संन्यासी ने कुछ और देश-भ्रमण किया। शिष्य वृन्दों को ज्ञानोपदेश दिए। फिर उन्हों ने जो कुछ पूजा चढ़ाई थी, उस की गठरी बाँध कर घर की ओर मुँह फेरा। लौटते हुए वह संयोग से उसी ग्राम में पहुँचा।

गाँव में पैर रखते ही संन्यासी को उस विचित्र आदमी की बात याद आ गई।

जंगल की उस जगह पर दृष्टि डालते ही वह पागल उसे यथा-स्थान दिखाई दिया। कुतूहलवश संन्यासी फौरन वहाँ पहुँचा—

'अरे भाई!— आज किस की जीत रही!' उसने प्रश्न किया।

खेलते-खेलते उस आदमी ने पहले की तरह पेड़ की ओर देख कर कहा—

'राजन्! खेल खतम करें!!' ऐसा कह कर वह ज़ोर से ठठा कर हँस पड़ा।

'अरे भाई! कुछ साफ़ बताओ तो सही। देखने से तो यही मालूम होता है कि आज तुम्हारी ही जीत हुई है!' संन्यासी ने कहा।

'हाँ! महात्मा आज मेरी ही जीत हुई है।' आप के आशीर्वाद से आज मैं ही जीत गया हूँ। यह मेरा सौभाग्य ही कि आज की बाजी की रकम भी बड़ी महत्व-पूर्ण है—एक सौ मुहरें!!' कह कर वह खिल-खिला कर हँसा। 'अच्छा! तो भगवान वह रकम तुम्हें कैसे देंगे!' अपनी हँसी को रोक कर संन्यासी ने पूछा।

'भगवान कभी अपने हाथ से जीत की रकम देते लेते नहीं हैं। उस समय वह किसी उत्तम साधु का रूप धारण करके मेरे सामने प्रत्यक्ष होते हैं; और मुझे बाजी की रकम दे-ले जाते हैं। आज मेरे भाग्य से ऐन मौके पर आप ने दर्शन दिए हैं!'

उस की बात का मतलब समझ कर वह संन्यासी मुँह बाए खड़ा रह गया—'आप अगर वह रकम मुझे दे देंगे, तो भगवान का कर्ज अदा हो जाएगा' यह कह कर उस धूर्त ने बगल की झाड़ी में रखी एक मोटी लाठी निकाल कर हाथ में ले ली।

संन्यासी ने डर कर वह सारी रकम, जो शिष्यों ने उसे भेंट दी थी, उस के हाथ में रख दी और खाली हाथ घर की राह ली!

फोटो - परिचयोक्ति - प्रतियोगित

अगस्त १९५४ :: पारितोषक १०)

कृपया परिचयोक्तियाँ कार्ड पर ही भेजें ।

ऊपर के फोटो जुलाई के अङ्क में छापे जाएँगे। इनके लिए उपयुक्त परिचयोक्तियाँ चाहिए। परिचयोक्तियाँ दो-तीन शब्द की हों और परस्पर-संबन्धित हों। परिचयोक्तियाँ पूरे नाम और पते के साथ कार्ड पर ही लिख कर निम्न लिखित पते पर भेजनी चाहिए।

फोटो - परिचयोक्ति - प्रतियोगिता
चन्दामामा प्रकाशन
वडपलनी : : मद्रास-२६

सूचन

अब तक हम जो फोटो परिचयोक्ति प्रतियोगिता में जीतने वाले प्रेषकों के नाम एक मास पहले ही प्रकाशित करते आए हैं। अब से पाठकों की सुविधा का ख्याल करके हमने एक छोटा सा परिवर्तन किया है। वह परिवर्तन यह है—पुरस्कार पाने वाले प्रेषकों के नाम और फोटो भी एक साथ प्रकाशित किए जाएँ। उदहारण के लिए जुलाई महीने के फल, फोटो के साथ जुलाई महीने में ही प्रकाशित होंगे। पुरस्कार की रकम दस रुपए जुलाई अंक के निकल आने के बाद भेजी जायगी।

मंगल-आरती

किसी समय थे दर्शनपुर में
हरिदास इक कवी जी रहते।
काम था उनका कथा बाँचना
और सुख-सागर में थे बहते।
मधुर कण्ठ था उनका ऐसा,
सुन कर तन्मय सब हो जाते।
हास्य-विनोद भी ऐसा करते—
भक्त हँसी को रोक न पाते।
भजन-मण्डली भी थी उनकी
गान सभी थे मिल कर गाते।
आरती थाली हाथ में ले फिर
पैसे सब से माँगके लाते।
धनी गाँव का था इक उनकी
भजन-सभा में रोज ही आता।
सीधा-साधा तो था दिखता
पर था धूर्त बहुत बड़ा।
भजन-सभा में वहाँ बैठ कर
ढोंगीपन था वह दिखलाता।
उस इक ढोंगीपन के कारण—
भक्ति-भाव भी था दर्शाता।
किन्तु उसके आने में भी
छिपा हुआ इक रहस्य था भारी।
काम दूसरा इक करने को
आता था वह कर तैयारी।
खोटे सिक्के कर रक्खे थे
उसने अपने पास जमा।
लेकर आता साथ में उनको
बदल उन्हें ले जाता था
पूजा की थाली में झट से
नकली सिक्का डाल था देता;
आगे की अब बात सुनो तुम
असली कैसे सिक्के लेता।
जो सिक्क वह डालता था
वह होता ज्यादा पैसे वाला

और बदले में उसके पाता
ज्यादा पैसों की वह माला
इसी तरह से चलते-चलते
बीते दिन भी और महीने
देता था वह नकली सिक्का
चला वहाँ पर चालाकी से
भजन-मण्डली अक्सर जाती
होटल में वह पैसे लेकर
खाते पूरी और कचौड़ी
अपने मन में थे खुश होकर।
एक रोज वह होटल वाला
सिक्के खोटे जान के बोला
'ये सिक्के हैं नकली सारे'
उन लोगों पै रहस्य ये खोला।
सुनी उन्होंने बात जो ऐसी
अचरज में सब लोग पड़े।
पता लगाएँगे हम इसका,
चले वे ऐसा निश्चय करके।
चलती थी वह आरती थाली
पहले ही सी रोज वहाँ।
एक नजर था उस पर रखता
जाती थी वह जहाँ-जहाँ।
आया था वह धूर्त भी अपने
साथ में नकली लेकर सिक्के।
थाली में फिर डाल के उनको
ले जाने को असली सिक्के।
डाला जैसे ही थाली में,
उसने एक था नकली सिक्का।
पहचाना तब उसे उन्होंने
और उसे झट जाकर पकड़ा।
रंग-मंच पर ला फिर उसको
और लोगों को ये बतलाया।
डालके नकली सिक्का देखो—
'असली सिक्का ले जाता था।'
लज्जित हो वह धूर्त बहुत ही
मन में अपने यों पछताता था।
'आगे से अब नहीं करूँगा—
ऐसा उसने प्रण उठाया।

श्याम सुन्दर

चुटकुले

सुमन : (नरेशसे) तुमने गाय पर निबन्ध किस प्रकार का लिखा है?

नरेश : जब मैं गाय पर निबन्ध लिखने कागज और कलम लेकर गया, तो वह मुझे सींग से मारने दौड़ी। इसलिए कुछ नहीं लिखा।

—o—

जेलर : (कैदी से) 'हम यहाँ कैदियों से वही काम कराते हैं : जो वे अपने घर पर करते थे। बताओ तुम घर पर क्या काम करते थे?'

कैदी : 'मैं घर पर सोता था और घूमता था!'

—o—

मास्टर : (सुरेश से) 'क्यों भाई सुरेश! आज तुम बालों को ओंछ कर क्यों नहीं आए!'

सुरेश : 'कंघा नहीं था।'

मास्टर : तो पिताजी के कंघे से ओंछ लेते।'

सुरेश : 'पिता जी के सिर पर बाल ही नहीं हैं।'

—o—

एक अंग्रेज जज के पास एक गाय की चोरी का मुकद्दमा पेश हुआ। जज अंग्रेज होने के कारण नहीं जानता था कि गाय किसे कहते हैं। जब उसे लाकर गाय दिखाई गई तो उसने कहा—'वेल, तुम हमको पहले क्यों नहीं बोला कि गाय का मेम साहब!!'

यी. नागेन्द्र

मास्टर : (मोहन से) बताओ वह कौन-सी ऐसी जगह है जहाँ कुछ भी पैदा नहीं होता?

मोहन : जी मैं एक ही जगह जानता हूँ— वह है मेरे दादा का गंजा सिर—

—o—

एक दफा मास्टर साहब लड़कों को व्याकरण पढ़ा रहे थे कि उन्होंने पूछा—'बताओ पायजामा कौन-सा वचन है?' इस पर लड़कों ने जवाब दिया —'ऊपर से तो एक वचन है और नीचे वह बहु वचन बन जाता है।'

चन्द्रकांता भटनागर

—o—

स्त्री : (अपने पति से) 'अजी सुनो! आपके सुपुत्र ने स्याही खा ली है।'

पति : (पत्नी से) 'तो क्या हुआ! उसे स्याही सोख खिला दो न!'

—o—

एक फेशनेबुल आदमी एक स्टेशन पर उतरा : तो उसे देखकर एक रिक्शावाला बोला— 'आइए बाबू आइए' इस पर उसने रिक्शावाले को एक तमाचा लगाकर कहा—'अबे गधे मैं आ. ई. ए. नहीं, बी. ए. हूँ।'

—o—

दो अंग्रेज एक हिन्दुस्तानी होटल में पहुँचे और बैरे से कहा—'वेल, टू. कप, टी' इस पर बैरा जो अंग्रेजी नहीं जानता है था बिगड़ कर बोला—'तू कपटी तेरा—बाप कपटी!!'

रघुनाथ प्रसाद

Printed by B. NAGI REDDI at the B. N. K. Press Ltd., Madras 26, and Published by him for Chandamama Publications, Madras 26. Controlling Editor, SRI 'CHAKRAPANI'

Photo by P. K. Patel

पुरस्कृत
परिचयोक्ति

पाने की आतुरता

प्रेषक
जगमोहन आचार्य खिलचीपुर

CHANDAMAMA (Hindi) JUNE 1954 Regd. No. M. 5452

रङ्गीन चित्र-कथा, चित्र – १